बाइबल पर आधारित निर्णय लेना

अध्याय सात

परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण: वास्तविकताओं को समझना

Manuscript

thirdmill

Biblical Education. For the World. For Free.

© थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ 2012 के द्वारा

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी भाग को प्रकाशक, थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़, इनकोरपोरेशन, 316, लाइव ओक्स बुलेवार्ड, कैसलबरी, फ्लोरिडा 32707 की लिखित अनुमति के बिना समीक्षा, टिप्पणी, या अध्ययन के उद्देश्यों के लिए संक्षिप्त उद्धरणों के अतिरिक्त किसी भी रूप में या किसी भी तरह के लाभ के लिए पुनः प्रकशित नहीं किया जा सकता।

पवित्रशास्त्र के सभी उद्धरण बाइबल सोसाइटी ऑफ़ इंडिया की हिन्दी की पवित्र बाइबल से लिए गए हैं। सर्वाधिकार © The Bible Society of India

थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ की सेवकाई के विषय में

1997 में स्थापित, थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ एक लाभनिरपेक्ष सुसमाचारिक मसीही सेवकाई है जो पूरे संसार के लिए मुफ्त में बाइबल आधारित शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है।

संसार के लिए मुफ़्त में बाइबल आधारित शिक्षा।

हमारा लक्ष्य संसार भर के हज़ारों पासवानों और मसीही अगुवों को मुफ़्त में मसीही शिक्षा प्रदान करना है जिन्हें सेवकाई के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ है। हम इस लक्ष्य को अंग्रेजी, अरबी, मनडारिन, रूसी, और स्पैनिश भाषाओं में अद्वितीय मल्टीमीडिया सेमिनारी पाठ्यक्रम की रचना करने और उन्हें विश्व भर में वितरित करने के द्वारा पूरा कर रहे हैं। हमारे पाठयक्रम का अनुवाद सहभागी सेवकाइयों के द्वारा दर्जन भर से अधिक अन्य भाषाओं में भी किया जा रहा है। पाठ्यक्रम में ग्राफिक वीडियोस, लिखित निर्देश, और इंटरनेट संसाधन पाए जाते हैं। इसकी रचना ऐसे की गई है कि इसका प्रयोग ऑनलाइन और सामुदायिक अध्ययन दोनों संदर्भों में स्कूलों, समूहों, और व्यक्तिगत रूपों में किया जा सकता है।

वर्षों के प्रयासों से हमने अच्छी विषय-वस्तु और गुणवत्ता से परिपूर्ण पुरस्कार-प्राप्त मल्टीमीडिया अध्ययनों की रचना करने की बहुत ही किफ़ायती विधि को विकसित किया है। हमारे लेखक और संपादक धर्मवैज्ञानिक रूप से प्रशिक्षित शिक्षक हैं, हमारे अनुवादक धर्मवैज्ञानिक रूप से दक्ष हैं और लक्ष्य-भाषाओं के मातृभाषी हैं, और हमारे अध्यायों में संसार भर के सैकड़ों सम्मानित सेमिनारी प्रोफ़ेसरों और पासवानों के गहन विचार शामिल हैं। इसके अतिरिक्त हमारे ग्राफिक डिजाइनर, चित्रकार, और प्रोड्यूसर्स अत्याधुनिक उपकरणों और तकनीकों का प्रयोग करने के द्वारा उत्पादन के उच्चतम स्तरों का पालन करते हैं।

अपने वितरण के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए थर्ड मिलेनियम ने कलीसियाओं, सेमिनारियों, बाइबल स्कूलों, मिशनरियों, मसीही प्रसारकों, सेटलाइट टेलीविजन प्रदाताओं, और अन्य संगठनों के साथ रणनीतिक सहभागिताएँ स्थापित की हैं। इन संबंधों के फलस्वरूप स्थानीय अगुवों, पासवानों, और सेमिनारी विद्यार्थियों तक अनेक विडिओ अध्ययनों को पहुँचाया जा चुका है। हमारी वेबसाइट भी वितरण के माध्यम के रूप में कार्य करती है और हमारे अध्यायों के अतिरिक्त सामग्रियों को भी प्रदान करती है, जिसमें ऐसे निर्देश भी शामिल हैं कि अपने शिक्षण समुदाय को कैसे आरंभ किया जाए।

थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज a 501(c)(3) कारपोरेशन के रूप में IRS के द्वारा मान्यता प्राप्त है। हम आर्थिक रूप से कलीसियाओं के टैक्स-डीडक्टीबल योगदानों, संस्थानों, व्यापारों और लोगों पर आधारित हैं। हमारी सेवकाई के बारे में अधिक जानकारी के लिए और यह जानने के लिए कि आप किस प्रकार इसमें सहभागी हो सकते हैं, कृपया हमारी वैबसाइट http://thirdmill.org को देखें।

विषय-वस्तु

परिचय 1
परमेश्वर 2
अधिकार 2
परम 2
विशिष्ट 3
व्यापक 3
नियंत्रण 4
स्वायत्त 4
नैतिक 5
उपस्थिति 6
वाचायी राजा 6
देहधारी प्रभु 7
सेवा करने वाला आत्मा 8
सृष्टि 10
गैरलौकिक 10
निवासी 11
आत्मिक युद्ध 12
प्राकृतिक 13
सृष्टि 13
पतन 14
छुटकारा 15
मानवजाति 16
समाज 16
एकजुटता 16
समानता 19
समुदाय 20
व्यक्तिगत लोग 21
चरित्र 22
अनुभव 22

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

शरीर 23
भूमिकाएं 24
निष्कर्ष 24

बाइबल पर आधारित निर्णय लेना

अध्याय सात

परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण: वास्तविकताओं को समझना

परिचय

अंग्रेजी साहित्य का सबसे लोकप्रिय जासूस शेरलोक होमस है। काल्पनिक शेरलोक होमस एक बहुत ही चतुर परामर्शदाता था जो पुलिस को मुश्किल मामलों को सुलझाने में सहायता करता था। और कहा जाता था कि मामलों को सुलझाने में होमस की प्रतिभा द्विरूपीय होती थी। एक ओर, उसमें अवलोकन करने की ऐसी शक्तियां थीं कि वह किसी मामले के सारे प्रासंगिक वास्तविक विवरणों को खोज सकता था। एवं दूसरी ओर, वह बहुत ही तार्किक था जिससे वह समझ लेता था कि किस प्रकार ये वास्तविकताएं उस अपराध से जुड़ी हैं जिसको वह सुलझाने का प्रयास कर रहा है। कई रूपों में बाइबलीय निर्णय लेने में मसीहियों को शेरलोक होमस के समान बनने की आवश्यकता है। हमें अनेक वास्तविक विवरणों को पहचानने की आवश्यकता है। और हमें यह भी देखने की आवश्यकता है कि किस प्रकार ये वास्तविकताएं उन नैतिक प्रश्नों से संबंध रखती हैं जिनका उत्तर देने का हम प्रयास कर रहे हैं।

यह हमारी श्रृंखला बाइबल पर आधारित निर्णय लेना का सातवां अध्याय है, और हमने इसका शीर्षक दिया है, “परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण: वास्तविकताओं को समझना”। इस अध्याय में हमारा लक्ष्य वर्तमान संसार में हमारे समक्ष आने वाली नैतिक परिस्थितियों के मुख्य घटकों को पहचानना एवं यह स्पष्ट करना है कि किस प्रकार प्रत्येक घटक हमारे द्वारा लिए जाने वाले नैतिक निर्णयों पर प्रभाव डालते हैं।

इन सारे अध्यायों में बाइबलीय निर्णय लेने का हमारा नमूना यह रहा है कि नैतिक निर्णय लेना एक व्यक्ति द्वारा एक परिस्थिति पर परमेश्वर के वचन को लागू करना होता है। नैतिक शिक्षा के इस दृष्टिकोण ने हमें यह याद दिलाया है कि हर नैतिक विषय पर तीन मुख्य दृष्टिकोण लिए जाने जरूरी हैं: परमेश्वर के वचन पर ध्यान जिसे हमने निर्देशात्मक दृष्टिकोण कहा है; व्यक्ति पर ध्यान जिसे हमने अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण कहा है; और परिस्थिति पर ध्यान जिसे हमने परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण कहा है। कई अध्यायों से हम परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण के कई पहलुओं पर ध्यान देते आ रहे हैं, और इस अध्याय में भी हम मसीही नैतिक शिक्षा के इस पहलू की और भी अधिक गहराई में जाएंगे।

आपको याद होगा कि पिछले अध्यायों में हमने हमारी नैतिक परिस्थितियों के सबसे मूल तत्वों को वास्तविकताओं के रूप में पहचाना था। ये वास्तविकताएं अस्तित्व में रहने वाली सब बातों को सम्मिलित करती हैं। इसके अतिरिक्त, हमने उन दो विशेष प्रकारों की वास्तविकताओं को पहचाना था जो नैतिक शिक्षा के लिए खास तौर से महत्वपूर्ण हैं। पहला, हमने हमारे लक्ष्यों के बारे में बात की थी, जो हमारे विचारों, शब्दों और कार्यों के प्रस्तावित या संभावित परिणाम होते हैं। और दूसरा, हमने माध्यमों के बारे में बात की थी, जो वे मार्ग हैं जिनके द्वारा हम हमारे लक्ष्यों तक पहुंचते हैं।

इस अध्याय में, हम सामान्य रूप में वास्तविकताओं की विशाल श्रेणी के और अधिक विवरणों को देखेंगे। विशेष रूप से, हम नैतिक निर्णय लेने के समय परमेश्वर, हमारे चारों ओर के संसार और मनुष्यजाति की वास्तविकताओं पर ध्यान देने के महत्व की जांच भी करेंगे।

हमारा अध्याय तीन भागों में विभाजित होगा। हम उस परमेश्वर की वास्तविकता को पहचानने के साथ आरंभ करेंगे, जिसमें हम जीवित रहते, चलते-फिरते और अपने अस्तित्व को रखते हैं। फिर, हम सामान्य रूप में सृष्टि की वास्तविकता का वर्णन करेंगे, जिसमें हम प्रकृति के कई क्षेत्रों को देखेंगे। और अंत में, हम

मानवजाति पर हमारी नैतिक परिस्थिति के एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में ध्यान देंगे। आइए पहले हम हमारी नैतिक परिस्थिति के पहली और प्राथमिक वास्तविकता के रूप में परमेश्वर पर ध्यान दें।

परमेश्वर

हम परमेश्वर को हमारी परिस्थिति में परम वास्तविकता के रूप में कहते हैं क्योंकि वही है जो हर अन्य वास्तविकता को अस्तित्व और अर्थ प्रदान करता है। अन्य वास्तविकताओं का अस्तित्व केवल इसीलिए है क्योंकि परमेश्वर ने उन्हें रचा था और उन्हें निरंतर बनाए रखता है। और उनका अर्थ केवल इसीलिए है क्योंकि परमेश्वर अपनी सृष्टि के भीतर आधिकारिक रूप से उन्हें अर्थ प्रदान करता है। और इसका अर्थ है कि हमें प्रत्येक अन्य वास्तविकता की व्याख्या परमेश्वर की वास्तविकता एवं उसके चरित्र के प्रकाश में करनी चाहिए। अतः, जब हम वास्तविकताओं के नैतिक महत्व पर ध्यान देते हैं, तो परमेश्वर के साथ आरंभ करना महत्वपूर्ण होता है।

मसीही नैतिक शिक्षा में परम वास्तविकता के रूप में परमेश्वर के बारे में हमारी चर्चा परमेश्वर के चरित्र के तीन परिचित पहलुओं पर ध्यान देगी: उसका अधिकार, जिसमें सारी सृष्टि पर शासन करने का उसका हक शामिल होता है; उसका नियंत्रण, जो सारी सृष्टि पर उसकी सामर्थ और उसका संचालन; और उसकी उपस्थिति, सृष्टि के भीतर उसका अस्तित्व एवं प्रकटीकरण। हम सारी सृष्टि के ऊपर उसके अधिकार, या शासन करने के उसके हक के साथ आरंभ करेंगे।

अधिकार

संपूर्ण पवित्रशास्त्र यह स्पष्ट करता है कि परमेश्वर का सारी सृष्टि के ऊपर अधिकार, शासन करने का हक है। यह शासन करने का हक इस वास्तविकता से निकलता है कि परमेश्वर सारी सृष्टि का रचनाकार और चलानेवाला है। सृष्टि का ऐसा कोई भाग नहीं है जिसे परमेश्वर ने नहीं बनाया या जो अपने निरंतर अस्तित्व के लिए परमेश्वर पर निर्भर नहीं होता। सृष्टिकर्ता के रूप में परमेश्वर के अधिकार में कम से तीन मूलभूत विशेषताएं पाई जाती हैं जिन्हें हमें मसीही नैतिक शिक्षा में सदैव याद रखना चाहिए: पहला, उसका अधिकार परम या संपूर्ण है। दूसरा, यह विशिष्ट है। और तीसरा, यह व्यापक है। आइए इन विचारों को ध्यान से देखें। हम सृष्टिकर्ता के रूप में परमेश्वर के अधिकार की परम प्रकृति के साथ आरंभ करेंगे।

परम

परमेश्वर का अधिकार इस भाव में परम है कि परमेश्वर की उस पर संपूर्ण और पूरी स्वतंत्रता है जिसकी उसने रचना की है। पवित्रशास्त्र प्रायः परमेश्वर के परम अधिकार की तुलना कुम्हार के अपनी मिट्टी के ऊपर अधिकार के साथ करने के द्वारा दर्शाता है। हम इस बात को यशायाह 29:16, यशायाह 45:9, यिर्मयाह 18:1-10 और रोमियों 9:18-24 में पाते हैं। सुनिए किस प्रकार पौलुस ने रोमियों 9:20-21 में परमेश्वर के अधिकार के बारे में कहा:

> क्या गढ़ी हुई वस्तु गढ़ने वाले से कह सकती है कि तू ने मुझे ऐसा क्यों बनाया है? क्या कुम्हार को मिट्टी पर अधिकार नहीं, कि एक ही लौंदे मे से, एक बरतन आदर के

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

> **लिये, और दूसरे को अनादर के लिये बनाए? तो इस में कौन सी अचम्भे की बात है? (रोमियों 9:20-21)**

पौलुस के साहित्यपूर्ण प्रश्न हमें सिखाते हैं कि क्योंकि परमेश्वर सबका सृष्टिकर्ता है और उसके पास पूरी आजादी और अधिकार है कि वह अपनी सृष्टि के साथ जो चाहे सो करे।

और जो कुछ लोगों के ऊपर परमेश्वर के परम अधिकार पर लागू होता है, वही शेष सृष्टि के ऊपर उसके अधिकार पर भी लागू होता है। परमेश्वर अपनी संपूर्ण सृष्टि के साथ अपनी इच्छा से जो चाहे वह कर सकता है। उसके पास आजादी और अधिकार है कि वह उसके साथ जैसा उसे उपयुक्त लगे वैसा व्यवहार करे, जो वह चाहे उसकी मांग करे, और अपने स्तरों के अनुसार उसका न्याय करे।

अतः जब परमेश्वर अपने नैतिक निर्णयों को प्रकट करता है, तो वे सत्य होते हैं और कभी उनका विश्लेषण नहीं किया जा सकता। सामान्य रूपों में, मसीही सामान्यतः इस विचार को स्वीकार करते हैं कि परमेश्वर के पास यह अधिकार है कि वह उन्हें नैतिक निर्णयों का निर्धारण करने की आज्ञा दे। परन्तु प्रायः ही हम परमेश्वर के नैतिक निर्णयों को तब तक स्वीकार नहीं करते जब तक उनकी किन्हीं अन्य स्तरों के द्वारा पुष्टि नहीं होती, और हम उन बातों के प्रति समर्पित होने से बचने के लिए बहाने को ढूंढते हैं जो उसने स्पष्ट रूप से कही हैं। परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं, नैतिक शिक्षा में परमेश्वर का अधिकार परम है। उसके नैतिक निर्णय, अच्छे और बुरे पर उसके दृष्टिकोण, को बस इसलिए सत्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए कि क्योंकि उसने ऐसा कहा है।

विशिष्ट

दूसरा, परम अधिकार के साथ-साथ, परमेश्वर का अपनी सारी सृष्टि पर विशिष्ट अधिकार भी है।

जब हम कहते हैं कि सृष्टिकर्ता के रूप में परमेश्वर का अधिकार विशिष्ट है तो हमारा अर्थ है कि केवल परमेश्वर के पास परम अधिकार है। परम अधिकार केवल सृष्टिकर्ता का होता है, और परमेश्वर एकमात्र सृष्टिकर्ता है। अतः, केवल परमेश्वर के पास यह परम अधिकार है। दूसरे अधिकार भी हैं, जैसे आत्माएं, स्वर्गदूत, सांसारिक शासक। और लोगों का भी एक हद तक अपने जीवनों पर अधिकार होता है। परन्तु ये सारे अधिकार परमेश्वर द्वारा ही दिए गए हैं ताकि परमेश्वर का अधिकार सृष्टि के अधिकार से श्रेष्ठ रहे। और फलस्वरूप, किसी भी निम्न अधिकार को सृष्टिकर्ता के उच्च अधिकार के द्वारा रद्द किया जा सकता है। इसका अर्थ है कि परमेश्वर के निर्णय वैध जांच से परे है। और इसी कारण बाइबल बल देती है कि हमारे नैतिक निर्णय परमेश्वर के प्रति संपूर्ण समर्पण में लिए जाएं।

व्यापक

तीसरा, परम और विशिष्ट अधिकार के साथ, परमेश्वर के पास सार्वभौमिक रूप से व्यापक अधिकार भी है।

जब हम कहते हैं कि परमेश्वर का अधिकार व्यापक है, तो हमारा अर्थ है कि यह हर रूप में उन सब पर लागू होता है जिसकी उसने रचना की है। और इस वास्तविकता के कम से कम दो महत्वपूर्ण आशय हैं। पहला, सारे प्राणी परमेश्वर के अधिकार में हैं। दूसरे शब्दों में, इस वास्तविकता के बावजूद भी कि अनेक मनुष्य परमेश्वर के विरूद्ध विद्रोह करते हैं और उसकी आज्ञाओं के प्रति समर्पित होने से इनकार कर देते हैं, फिर भी उसके नैतिक निर्णय उन पर लागू होते हैं। चाहे हम कहीं भी रहें, या हम कोई भी हों, और चाहे हमारी संस्कृति या धर्म कोई भी हो, सारे मनुष्य परमेश्वर के प्रति जिम्मेदार हैं। और दूसरा, क्योंकि परमेश्वर ने सब

चीजों की रचना की है, इसलिए सृष्टि का एक भी पहलु ऐसा नहीं है जो नैतिक रूप से उदासीन हो। उसने सब कुछ एक उद्देश्य के साथ रचा है और उसे एक नैतिक चरित्र दिया है। सारी सृष्टि या तो वैसे कार्य करती है जैसे परमेश्वर चाहता है और इसलिए अच्छी है, या फिर उसकी इच्छा के विरूद्ध कार्य करती है इसलिए बुरी है। अपने हर पहलू में सृष्टि उसके अधीन है। अतः जब हम उसकी सेवा करने का प्रयास करते हैं, तो हमें सदैव उसके अधिकार पर ध्यान देना चाहिए और उसके प्रति समर्पित रहना चाहिए।

परमेश्वर के अधिकार पर ध्यान देने के बाद, हमें परमेश्वर के विषय में दूसरी वास्तविकता पर हमारे ध्यान को लगाना चाहिए: सारी सृष्टि पर उसका नियंत्रण- संपूर्ण अस्तित्व पर उसका सामर्थशाली संचालन।

नियंत्रण

आरंभ से ही हमें यह पहचानना है कि मसीही कलीसिया की भिन्न शाखाएं भिन्न रूपों में सृष्टि पर परमेश्वर के नियंत्रण को समझती हैं। परन्तु मसीही विशाल रूप में सहमत होते हैं, क्योंकि पवित्रशास्त्र परमेश्वर के नियंत्रण के कई पहलुओं के विषय में बहुत ही स्पष्ट है।

हम सृष्टि पर परमेश्वर के नियंत्रण से संबंधित दो आधारभूत विषयों तक सीमित रहेंगे। पहला, परमेश्वर के नियंत्रण के स्वायत्त चरित्र के बारे में बात करेंगे। और दूसरा, हम उसके नियंत्रण के नैतिक चरित्र को प्रदर्शित करेंगे। आइए पहले हम सृष्टि पर परमेश्वर के नियंत्रण के स्वायत्त चरित्र को देखें।

स्वायत्त

सदियों से मसीहियों ने सदैव सृष्टि पर परमेश्वर के स्वायत्त नियंत्रण की पुष्टि की है। निसंदेह धर्मविज्ञानियों एवं संप्रदायों ने कुछ विषयों पर भिन्नता को प्रकट किया है। परन्तु मोटे तौर पर बात करें तो मसीहियों ने सदैव इस बाइबलीय शिक्षा की पुष्टि की है कि परमेश्वर के पास जैसे वह उचित समझता है वैसे सृष्टि पर नियंत्रण करने की असीमित योग्यता व असीमित अधिकार है। इससे बढ़कर, क्योंकि वह भला है और अपनी सृष्टि के ऊपर एक जिम्मेदार राजा है, इसलिए वह अपने राज्य की भलाई के लिए अपनी सामर्थ और अपने अधिकार का प्रयोग करता है।

दुर्भाग्यवश, कई रूपों में मसीहियों और गैरमसीहियों ने कभी-कभी यह तर्क दिया है कि अपनी सृष्टि के ऊपर परमेश्वर का स्वायत्त नियंत्रण मानवीय नैतिक जिम्मेदारी के विचार के साथ मेल नहीं खाता। उन्होंने गलत रूप से यह माना है कि ये दोनों विचार सही नहीं हो सकते। या तो परमेश्वर स्वायत्त है, या हम जिम्मेदार हैं- दोनों बातें एक साथ सही नहीं हो सकतीं।

हाल ही के वर्षों में इस दृष्टिकोण को मुक्त ईश्वरवाद नामक आंदोलन में व्यक्त किया गया है। मुक्त ईश्वरवाद सिखाता है कि हमारे नैतिक निर्णयों और व्यवहार के लिए यदि परमेश्वर को मनुष्यों को जिम्मेदार ठहराना है, तो मनुष्यों के पास उनके जीवनों पर परम अधिकार होना चाहिए। यह इस बात पर बल देता है कि यदि परमेश्वर के पास स्वायत्त रूप से सार्वभौमिक नियंत्रण है तो उसके पास हमारे कार्य के लिए हमें जिम्मेदार ठहराने का कोई अधिकार नहीं है।

अतः मानवीय नैतिक जिम्मेदारी को बचाए रखने के लिए मुक्त ईश्वरवाद सिखाता है कि परमेश्वर ने या तो जानबूझकर अपनी स्वायत्तता को सीमित कर दिया है, या फिर अपने चरित्र में सारी सृष्टि पर नियंत्रण रखने में असमर्थ है। यह इस बात को तय करता है कि परमेश्वर नहीं जानता कि क्या होगा, कि सृष्टि में होने वाली बातों पर उसका प्रभाव सीमित है, और कि वह इतिहास के कार्यों से प्रायः हताश हो जाता है। सारांश में, मुक्त ईश्वरवाद मानवीय जिम्मेदारी को अभिपुष्ट करने के लिए परमेश्वर के स्वायत्त नियंत्रण का इनकार कर देता है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

अब ऐतिहासिक रूप से मसीही धर्मविज्ञान ने प्रायः सिखाया है कि परमेश्वर का स्वायत्त नियंत्रण मानवीय जिम्मेदारी के साथ पूरी तरह से अनुकूल है। वास्तव में, परमेश्वर के नियंत्रण को मानवीय जिम्मेदारी की रूकावट के रूप में देखने की अपेक्षा मसीही धर्मविज्ञान ने इस बात पर बल देते हुए पवित्रशास्त्र का अनुसरण किया है मनुष्य परमेश्वर के प्रति नैतिक रूप से खासकर इसलिए जिम्मेदार है क्योंकि परमेश्वर का सृष्टि पर स्वायत्त रूप से नियंत्रण है। आइए विस्तार से देखें कि हमारे कहने का क्या अर्थ है।

एक ओर अनेक बाइबलीय अनुच्छेद सिखाते हैं कि परमेश्वर के पास अपनी सृष्टि के लिए सर्वव्यापी योजना है और कि वह अपनी योजना को पूरा करने के लिए सृष्टि को नियंत्रित करता है। उदाहरण के लिए, बाइबल कभी-कभी अपने अपरिवर्तनीय उद्देश्य के बारे में बात करती है, जैसा कि इब्रानियों 6:17, या संसार की नींव रखने से पहले जो योजनाएं उसने बनाईं, जैसा कि मत्ती 13:35 और इफिसियों 1:4। अन्य समयों में, वह उस योजना के बारे में बात करता है जिसके द्वारा वह सारी सृष्टि को नियंत्रित करता है, जैसा कि रोमियों 8:28। यह उसके लोगों एवं घटनाओं की नियुक्ति के बारे में भी बात करता है, जैसे कि प्रेरितों के काम 4:28 और रोमियों 8:29 में।

अब मसीहियों ने कई रूपों में ब्रह्मांड पर परमेश्वर के नियंत्रण को उसके पूर्वज्ञान, उसकी सक्रिय और निष्क्रिय इच्छा और उसके सकारात्मक एवं अनुमतिदायक नियमों जैसी बातों के साथ जोड़ने के द्वारा दर्शाया है। परन्तु अंतिम विश्लेषण में, ऐतिहासिक मसीहियत ने सदैव इस बात की पुष्टि की है कि क्योंकि परमेश्वर सृष्टिकर्ता है, इसलिए वह अपनी सृष्टि पर स्वायत्त नियंत्रण रख सकता है और रखता है।

दूसरी ओर, परमेश्वर के स्वायत्त नियंत्रण को नैतिक जिम्मेदारी के विरूद्ध देखने की अपेक्षा मसीहियत ने परमेश्वर के स्वायत्त नियंत्रण को उनकी नैतिक जिम्मेदारी के आधार के रूप में देखा। सुनिए किस प्रकार पौलुस ने परमेश्वर के स्वायत्त नियंत्रण और हमारी जिम्मेदारी के बीच संबंध को फिलिप्पियों 2:12-13 में दर्शाया:

> अपने अपने उद्धार का कार्य पूरा करते जाओ। क्योंकि परमेश्वर ही है, जिस न अपनी सुइच्छा निमित्त तुम्हारे मन में इच्छा और काम, दोनों बातों के करने का प्रभाव डाला है। **(फिलिप्पियों 2:12-13)**

यहां ध्यान दें कि फिलिप्पियों के मसीहियों को नैतिक रूप से और सम्माननीय रूप से जीना था क्योंकि परमेश्वर उनके जीवनों में काम कर रहा था और अपनी स्वायत्त योजना के अनुसार उनकी इच्छा और कार्य को ढाल रहा था। इस रूप में, उनके जीवनों पर उसका स्वायत्त नियंत्रण उनकी नैतिक जिम्मेदारी का आधार था। स्वर्गीय स्वायत्तता और मानवीय जिम्मेदारी को परस्पर अलग-अलग देखने की अपेक्षा पौलुस ने परमेश्वर की स्वायत्तता को मानवीय जिम्मेदारी की बुनियाद के रूप में समझा।

हमने यहां सृष्टि पर परमेश्वर के स्वायत्त चरित्र के बारे में बात की है, और अब हम उसके नियंत्रण के नैतिक चरित्र के बारे में बात करने के लिए तैयार है, जिसमें हम यह देखेंगे कि किस प्रकार परमेश्वर ने सृष्टि को नैतिकता के प्रति सहायक बनाया है।

नैतिक

मसीही नैतिक शिक्षा का एक बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धांत है कि परमेश्वर मनुष्यों को ऐसी नैतिक परिस्थितियों में बलपूर्वक नहीं डालता जिसमें से निकलने का कोई मार्ग न हो। पवित्रशास्त्र हमें सिखाता है कि नैतिक असंमजस चाहे जितने भी जटिल क्यों न होते हों, परमेश्वर सदैव पाप से बचने के माध्यम और अवसर प्रदान करता है। इस सामान्य सिद्धान्त को 1कुरिन्थियों 10:13 में रखा गया है जहां पौलुस ने ये शब्द लिखे:

> तुम किसी ऐसी परीक्षा में नहीं पड़े, जो मनुष्य के सहने से बाहर है, और परमेश्वर सच्चा है, वह तुम्हें सामर्थ से बाहर परीक्षा में न पड़ने देगा, वरन परीक्षा के साथ निकास भी करेगा, कि तुम सह सको। (1कुरिन्थियों 10:13)

अपने मूल संदर्भ में इस पद ने मूर्तिपूजा की उस परीक्षा में पड़ने के बारे में बताया जिसमें से कुरिन्थियों की कलीसिया होकर जा रही थी। परन्तु सामान्य सिद्धान्त यहां पर भी लागू होता है: परमेश्वर हमारे समक्ष ऐसी परिस्थितियां लेकर नहीं आता जहां सारे विकल्प पापमय हों। वह सदैव परिस्थितियों को इस प्रकार रखता है कि हमें एक ऐसा समाधान मिले जो प्रशंसनीय हो और पापमय न हो।

निसंदेह, कभी-कभी बचने का यह मार्ग सरलता से दिखाई नहीं देता। हम में से अधिकांश लोग अनुभव से जानते हैं कि नैतिक असमंजस का समाधान करना कई बार बहुत मुश्किल होता है। और बच निकलने के मार्ग का लाभ लेने के लिए पहले हमें स्वयं को महत्वपूर्ण रूपों में बदलना होगा। परन्तु हम इस बात से आश्वस्त हो सकते हैं कि इस प्रकार के परिवर्तनों का अवसर सदैव रहता है।

हमारा अर्थ यही है जब हम कहते हैं कि परमेश्वर का नियंत्रण नैतिक है। वह सृष्टि को व्यवस्थित करता है जिससे हमारे जीवन की परिस्थितियां कभी हमारे अनैतिक विकल्पों को अनदेखा नहीं करतीं। वह संपूर्ण ब्रह्मांड को संचालित करता है ताकि पाप की परीक्षा से बचने का मार्ग सदैव उपलब्ध रहे।

हमारी परिस्थिति में आधारभूत तथ्यों के रूप में परमेश्वर के अधिकार और नियंत्रण पर विचार करने के बाद हम परमेश्वर के चरित्र के तीसरे पहलू की ओर मुड़ने के लिए तैयार हैं: जब वह संसार में स्वयं को कार्यरत करता है तो हमारे बीच उसकी उपस्थिति।

उपस्थिति

सृष्टि में परमेश्वर की उपस्थिति के बारे में हमारी चर्चा तीन भागों में विभाजित होगी: पहला, हम वाचायी राजा के रूप में परमेश्वर के बारे में बात करेंगे। दूसरा, हम देहधारी प्रभु के रूप में उसके बारे में बात करेंगे। तीसरा, हम सेवा करने वाले आत्मा के रूप में उसके बारे में बात करेंगे। आइए सबसे पहले सृष्टि, विशेषकर मानवजाति पर वाचायी राजा के रूप में परमेश्वर की भूमिका की ओर बढ़ें।

वाचायी राजा

परमेश्वर आदम और हव्वा की रचना के समय से ही हमारे वाचायी राजा के रूप में मानवजाति के साथ उपस्थित रहा है। जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा, हमारे पहले माता-पिता की रचना परमेश्वर के स्वरूप, उसके वासल राजाओं के रूप में हुई थी जिनका कार्य सारी पृथ्वी पर परमेश्वर के राज्य को फैलाना था। और परमेश्वर प्रकट रूप में उनको आशीष देने के लिए उपस्थित था जब वे विश्वासयोग्य रहते थे, और श्राप देने के लिए भी जब उन्होंने पाप किया।

मनुष्य के पाप में पतन के साथ परमेश्वर वाटिका में आदम और हव्वा के साथ नहीं चला। फिर भी, परमेश्वर ने अपनी सृष्टि को नहीं छोड़ा; वह मानवजाति के साथ हमारे वाचायी राजा के रूप में उपस्थित रहा।

निसंदेह, परमेश्वर सदैव अदृश्य रूप से सर्वव्यापी रहा है। परन्तु वह अनेक दृष्टिगोचर प्रकटीकरणों में प्रकट भी हुआ है, जैसे कि आग के खम्बे और बादल के रूप में जिसके बारे में हम निर्गमन के अध्याय 13 में पढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त, उसने चमत्कारों के माध्यम से अपनी उपस्थिति को प्रकट किया है, जैसे कि निर्गमन 14 में लाल समुद्र का बांटना। वह कुछ लोगों के साथ विशेष रूपों में भी उपस्थित रहा है, जैसे कि

ऐल्लियाह, जिसने 2राजाओं 1 में स्वर्ग से आग उतारी। परमेश्वर प्रायः इस्राएल के वाचायी राजा के रूप में उपस्थित रहा, और उसने अपने लोगों को सुरक्षा एवं आशीषें प्रदान कीं, और अपने शत्रुओं को श्राप दिया एवं उन्हें नाश किया। परमेश्वर आज भी हमारा राजा है, जैसा कि यीशु ने मत्ती 5:34-35 में सिखाया।

हमारे वाचायी राजा के रूप में परमेश्वर के साथ हमारी उपस्थिति का अर्थ है कि वह सारी पृथ्वी और उसके निवासियों पर अपने निर्णयों को लागू करने के लिए यहां है। जैसे कि इब्रानियों 4:13 इसे कहता है:

> और सृष्टि की कोई वस्तु उस से छिपी नहीं है वरन जिससे हमें काम है, उस की आंखों के साम्हने सब वस्तुएं खुली और बेपरदा हैं। (इब्रानियों 4:13)

परमेश्वर सब कुछ देखता है क्योंकि वह सर्वत्र विद्यमान है। और वह उसी आधार पर हमारा न्याय करता है जो वह देखता है। आपको याद होगा कि पहले के एक अध्याय में हमने मसीही नैतिक शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है:

> वह धर्मविज्ञान जिसे निर्धारित करने के उन साधनों के रूप में देखा जाता है कि कौनसे मनुष्य, कार्य और स्वभाव परमेश्वर की आशीषों को प्राप्त करते हैं और कौनसे नहीं।

हमारे नैतिक निर्णय इस आधार पर होने चाहिए कि एक न्यायी के रूप में परमेश्वर की उपस्थिति आज और भविष्य में भी हमारे साथ है। और इसलिए, राजकीय न्यायी के रूप में हमारे साथ उसकी उपस्थिति नैतिक निर्णय लेने में एक महत्वपूर्ण वास्तविकता है। हम परमेश्वर से अलग नही रहते; हम उसके दण्ड और उसकी आशीषों के तहत उसकी उपस्थिति में रहते हैं।

वाचायी राजा के रूप में परमेश्वर की भूमिका को मन में रखते हुए, हम यीशु मसीह के व्यक्तित्व में देहधारी प्रभु के रूप में परमेश्वर की उपस्थिति की ओर मुड़ने के लिए तैयार हैं।

देहधारी प्रभु

जब बैतलेहम में मरियम के द्वारा यीशु का जन्म हुआ तो परमेश्वर एक नए रूप में हमारे साथ उपस्थित हो गया। शायद सबसे स्पष्ट भिन्नता यह थी कि वह शारीरिक रूप से उपस्थित था और हम में से एक के समान समाज में रहा था। हालांकि हम उसके देहधारण के अनेक नैतिक परिणामों को दर्शा सकते हैं, परन्तु हम हमारे विचार-विमर्श को चार विषयों तक सीमित रखेंगे।

पहला, इब्रानियों 2:17 सिखाता है कि पापों की क्षमा यीशु के मानवीय स्वभाव और पृथ्वी पर उसकी भौतिक उपस्थिति से मिलती है, विशेषकर क्रूस पर उसकी मृत्यु के द्वारा। और इसी क्षमा के द्वारा हम परमेश्वर से हमारे भले कार्यों के लिए आशीष पाते हैं।

दूसरा, पृथ्वी पर अपने मानवीय जीवन के द्वारा ही यीशु ने हमारे लिए हमारी परीक्षाओं के बीच प्रत्यक्ष अनुकंपा को प्राप्त किया। इब्रानियों 2:18 के शब्दों को सुनिए:

> क्योंकि जब उस ने परीक्षा की दशा में दुख उठाया, तो वह उन की भी सहायता कर सकता है, जिन की परीक्षा होती है। (इब्रानियों 2:18)

स्वर्गीय पिता के समक्ष मध्यस्थता करने के द्वारा यीशु आश्वस्त करता है कि हमारे कार्यों का न्याय दयापूर्वक किया जाए, न कि कठोरता से। और वह हम पर अनुग्रह करने के लिए पिता को प्रोत्साहित करता है, और दिन प्रतिदिन पाप का विरोध करने एवं हमारे जीवन में क्षमा को लागू करने में हमें सामर्थ देता है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

तीसरा, हमारे साथ यीशु की भौतिक उपस्थिति संपूर्ण मानवीय जीवन के लिए धार्मिकता के एक प्रारूप को प्रदान करती है। पवित्रशास्त्र में मसीह के जीवन के कई वर्णन पाए जाते हैं, और वे सब हमारे समक्ष सिद्ध नैतिक व्यवहार, विचारों, भावनाओं और निर्णय की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। और अब परमेश्वर हमें मसीह के स्वरूप में बना रहा है, न केवल अनुसरण करने का एक आदर्श हमें दे रहा है बल्कि उसके समान बनने के लिए सामर्थ दे रहा है।

और चौथा, हमारी नैतिक विजय की निश्चितता यीशु की उपस्थिति से होती है। पृथ्वी पर यीशु की सेवकाई ने परमेश्वर के राज्य की संपूर्ण पुनर्स्थापना को आरंभ कर दिया। अपने और हमारे शत्रुओं को क्रूस पर परजित करने के द्वारा यीशु ने नैतिक संघर्षों में विजय पाने में हमें सामर्थ दी, और उसने हमारी अंतिम विजय को आश्वस्त किया।

हम इस समय मसीह की मानवीय उपस्थिति में नहीं रह सकते। परन्तु पृथ्वी पर उसकी अतीत की उपस्थिति नैतिक व्यवहार को स्पष्ट करने, और नैतिक व्यवहार को संभव बनाने में भी महत्वपूर्ण थी। और स्वर्ग में उसकी निरंतर भौतिक उपस्थिति परमेश्वर के समक्ष हमारे नैतिक स्तर का एक अभिन्न अंग है।

अब जब हमने परमेश्वर के बारे में हमारे वाचायी राजा और देहधारी प्रभु के रूप में बात कर ली है, तो अब हमें सेवा करने वाले आत्मा के रूप में परमेश्वर की उपस्थिति की ओर मुड़ना चाहिए, जो कि परमेश्वर की सबसे प्रत्यक्ष उपस्थिति है जो हम आज के समय में पाते हैं।

सेवा करने वाला आत्मा

जब यीशु का स्वर्गारोहण हुआ तो उसने अपना आत्मा कलीसिया पर उंडेला। पवित्र आत्मा कई रूपों में हमारे साथ सेवा करता है, परन्तु हम हमारे बीच उसकी दो मुख्य सेवाओं के बारे में ही बात करेंगे। पहला, पवित्र आत्मा विश्वासियों के भीतर वास करता है, और नैतिक निर्णय लेने में हमारी सहायता करता है और हमें उत्साहित करता है।

रोमियों 8:9-10 में पौलुस ने पवित्र आत्मा के वास करने के बारे में इन शब्दों को लिखा:

> तुम शारीरिक दशा में नहीं, परन्तु आत्मिक दशा में हो। यदि किसी में मसीह का आत्मा नहीं तो वह उसका जन नहीं। और यदि मसीह तुम में है, तो देह पाप के कारण मरी हुई है; परन्तु आत्मा धर्म के कारण जीवित है। (रोमियों 8:9-10)

पौलुस ने कहा कि पवित्र आत्मा कम से कम ऐसे दो कार्य करता है जो मसीही नैतिक शिक्षा के केन्द्र बिंदू हैं: पहला, वह हमें आत्मिक जीवन देता है, और दूसरा, वह हमें नियंत्रित करता है। आइए, इन विचारों पर और अधिक ध्यान दें।

मानवजाति के पाप में पतन के कारण, सारे मनुष्य आत्मिक मृत्यु की दशा में जन्म लेते हैं। यह हमें नैतिक रूप से निर्बल बना देता है; हमारे भीतर ऐसा करने की कोई सामर्थ नहीं है जिसे परमेश्वर अच्छा मानता हो। परन्तु जब पवित्र आत्मा हमें नया जीवन देता है, तो वह हमें नैतिक योग्यता भी देता है जिससे हम भले कार्य कर सकते हैं। और इसका अर्थ है कि हमें पाप का विरोध करने में सहायता प्राप्त करने हेतु पवित्र आत्मा पर निर्भर रहना चाहिए, और हम ऐसा कर सकते हैं।

परन्तु पवित्र आत्मा हमारे हृदयों और मनों को बदलता है ताकि हम परमेश्वर से प्रेम करें और उसकी आशीषों की अभिलाषा करें। सारांश में, वह हमें नैतिक रूप से जीने की चाहत देता है। और इस प्रकार, हमारी

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

यह जिम्मेदारी है कि हम हमारे जीवनों पर उसके नियंत्रण के प्रति समर्पित हो जाएं और हमारी पापमय अभिलाषाओं की अपेक्षा भक्तिपूर्ण कामनाओं का अनुसरण करें।

हमारे भीतर वास करने के अतिरिक्त, पवित्र आत्मा विश्वासियों को कलीसिया की सेवा के लिए अलौकिक सामर्थ के वरदान भी देता है। पवित्र आत्मा ने विश्वासियों को संपूर्ण इतिहास में कई रूपों में वरदान दिए हैं। यद्यपि पुराने नियम में भी आत्मा विश्वासियों में वास करता था, परन्तु उसने आत्मिक वरदान कुछ विशेष लोगों को ही दिए, जैसे कि भविष्यवक्ता, याजक और राजा। परन्तु पुराना नियम भी एक ऐसे दिन की प्रतीक्षा में था जब आत्मा परमेश्वर के सब लोगों पर उंडेला जाएगा। प्रेरितों के काम 2:16-17 में पतरस के शब्दों को सुनें:

> परन्तु यह वह बात है, जो योएल भविष्यद्वक्ता के द्वारा कही गई है। कि परमेश्वर कहता है, कि अन्त कि दिनों में ऐसा होगा, कि मैं अपना आत्मा सब मनुष्यों पर उंडेलूंगा और तुम्हारे बेटे और तुम्हारी बेटियां भविष्यद्वाणी करेंगी और तुम्हारे जवान दर्शन देखेंगे, और तुम्हारे पुरिनए स्वप्न देखेंगे। **(प्रेरितों 2:16-17)**

योएल ने एक ऐसे समय की भविष्यवाणी की थी जब पवित्र आत्मा सब विश्वासियों पर उंडेला जाएगा, और उन सबको आत्मिक वरदान दिए जिनमें वह वास करता था। और पतरस ने सिखाया कि यह पिन्तेकुस्त के दिन हुआ। उस दिन से कलीसिया के हर विश्वासी को आत्मिक वरदान दिया गया है।

1 कुरिन्थियों 12, रोमियों 12 और इफिसियों 4 जैसे अनुच्छेदों और कलीसिया के इतिहास से हम जानते हैं कि कुछ आत्मिक वरदान आम तौर पर पाए जाते हैं- जैसे सेवा करना, प्रचार करना, शिक्षा देना, सुसमाचार प्रचार करना, उत्साहित करना, योगदान देना और प्रबंधन करना। कुछ और विशेष वरदान जैसे कि दर्शन, चमत्कार, और अन्य भाषाओं में बात करना उतने आम तौर पर नहीं पाए जाते। परन्तु चाहे कैसे भी आत्मिक वरदान हम में क्यों न हों, जो बात हम कहना चाहते हैं, वह यह है: पवित्र आत्मा कलीसिया के निर्माण के लिए वरदान देता है। अतः, चाहे जैसे भी वरदान हम में हों, हमारा नैतिक कर्त्तव्य परमेश्वर के लोगों की भलाई के लिए उनका इस्तेमाल करना है। 1 कुरिन्थियों 12:7, 11 में इस विषय पर पौलुस की शिक्षाओं को सुनिए:

> सब के लाभ पहुंचाने के लिये हर एक को आत्मा का प्रकाश दिया जाता है। परन्तु ये सब प्रभावशाली कार्य वही एक आत्मा करवाता है, और जिसे जो चाहता है वह बांट देता है। **(1कुरिन्थियों 12:7, 11)**

पवित्र आत्मा की उपस्थिति में जीवन बिताने का एक नैतिक आशय यह है कि हम उन वरदानों को पहचानें और इस्तेमाल करें जो परमेश्वर ने हमें दिए हैं।

परमेश्वर से संबंधित किसी भी नैतिक परिस्थिति में जिन आधारभूत वास्तविकताओं पर हमें ध्यान देना जरूरी है, वे ये हैं: उसका परम, एकमात्र, संपूर्ण अधिकार; सृष्टि पर उसका नियंत्रण; और वाचायी राजा, देहधारी प्रभु एवं सेवा करने वाले आत्मा के रूप में हमारे साथ उसकी उपस्थिति। जब हम इस बात को अच्छी तरह से समझ लेते हैं कि परमेश्वर कौन है, तो हम ऐसे निर्णयों को लेने में और अच्छी तरह से तैयार हो सकते हैं कि उसे क्या प्रसन्न करता है और उसकी आशीषों को हमारे पास लाता है।

स्वयं परमेश्वर से संबंधित वास्तविकताओं को पहचानने के बाद, अब हम उन वास्तविकताओं की ओर मुड़ने के लिए तैयार हैं जो सामान्यतः सृष्टि को बनाती हैं, जिसमें इसके भौतिक और आत्मिक पहलू भी शामिल होते हैं।

सृष्टि

पारंपरिक विधिवत् धर्मविज्ञान ने तीनों आधारभूत क्षेत्रों के मुख्य निवासियों के रूप में रहने वालों के बारे में विस्तार से बात की है। पहला, एक अलौकिक क्षेत्र है, वह क्षेत्र जो प्रकृति से ऊपर है। यद्यपि हम प्रायः इस शब्द का प्रयोग उसे बताने के लिए करते हैं जो हमारे प्राकृतिक संसार का हिस्सा नहीं होता, परन्तु विधिवत् धर्मविज्ञान में इसका और अधिक व्यावहारिक प्रयोग होता है। विशेष रूप में, यह परमेश्वर और उसके कार्यों को दर्शाता है, क्योंकि केवल परमेश्वर ही वास्तव में प्राकृतिक संसार से ऊंचा, सामर्थी और आधिकारिक है।

दूसरा, एक प्राकृतिक क्षेत्र है। यह वह संसार है जो परमेश्वर ने उत्पत्ति 1 में रचा था, वह संसार जिसमें हम जीते और कार्य करते हैं। और निसंदेह, यह सृष्टि का वह भाग है जो मनुष्यों से सबसे अधिक जाना-पहचाना है।

और तीसरा, एक गैरलौकिक क्षेत्र है, वह क्षेत्र प्रकृति से परे है। यह प्रकृति से ऊपर नहीं है जैसा कि परमेश्वर है, बल्कि सृष्टि के एक भिन्न पहलू के रूप में प्रकृति के साथ वाला क्षेत्र है। यह वह क्षेत्र है जिसमें स्वर्गदूत और दुष्टात्माओं जैसी अदृश्य आत्माएं रहती हैं।

इस पारंपरिक धारणा के सामंजस्य में ही सृष्टि की वास्तविकताओं के बारे में हमारी चर्चा दो भागों में विभाजित होगी। पहला, हम सृष्टि के गैरलौकिक पहलुओं पर ध्यान देंगे, और देखेंगे कि किस प्रकार स्वर्गदूतों और दुष्टात्माओं से भरा हुआ आत्मिक क्षेत्र मसीही नैतिक शिक्षा से संबंधित है। दूसरा, हम प्राकृतिक संसार और नैतिक शिक्षा के साथ इसके संबंध को संबोधित करेंगे। आइए पहले सृष्टि के अदृश्य पहलुओं अर्थात् गैरलौकिक के साथ आरंभ करें।

गैरलौकिक

दुर्भाग्यवश, विशेषकर पाश्चात्य संस्कृतियों में आधुनिक मसीही प्रायः उन अदृश्य स्वर्गदूतों और दुष्टात्माओं पर बहुत ही कम ध्यान देते हैं जो हमारे चारों ओर रहते हैं और हमारे साथ परस्पर कार्य करते हैं। और यह कोई आश्चर्य करने वाली बात नहीं होनी चाहिए। आखिरकार, हमारा मानवीय अनुभव सामान्यतः प्राकृतिक संसार तक ही सीमित है। हम निरन्तर दूसरे लोगों और हमारे भौतिक वातावरण के साथ परस्पर कार्य करते रहते है, और हम साधारणतया सारे संसार और इसकी घटनाओं को प्राकृतिक रूप में स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। अतः हम गैरलौकिक संसार को बहुत ही कम महत्व देते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि स्वर्गदूतों और दुष्टात्माओं का हमारे जीवन में होने वाली घटनाओं पर बहुत ही महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। और परिणामस्वरूप, नैतिक निर्णय लेने की बात आती है तो गैरलौकिक संसार ध्यान देने योग्य एक महत्वपूर्ण विचार है।

हम मसीही नैतिक शिक्षा से संबंधित दो भिन्न शीर्षकों के तले सृष्टि के गैरलौकिक पहलुओं पर चर्चा करेंगे। पहला, हम गैरलौकिक क्षेत्र के निवासियों और प्राकृतिक संसार के साथ उनके संबंध का वर्णन करेंगे। और दूसरा, हम आत्मिक युद्ध, अर्थात् हमारे चारों ओर अच्छाई और बुराई के बीच होने वाले आकाशीय संघर्ष के विषय की ओर मुड़ेंगे। आइए, पहले हम गैरलौकिक क्षेत्र के निवासियों, अर्थात् स्वर्गदूतों और दुष्टात्माओं, की ओर मुड़ें।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

निवासी

आधुनिक विज्ञान सारे ब्रह्मांड में मुख्यतः केवल मनुष्यजाति को ही विवेकपूर्ण प्राणियों के रूप में बताती है। हम सब महसूस करते हैं कि एक बड़े सौरमंडल में हम एक ऐसे छोटे से ग्रह में रहते हैं जिसके चारों ओर एक छोटा सूर्य चक्कर लगाता है जो कि सारे ब्रह्मांड का एक छोटा सा हिस्सा है।

परन्तु पवित्रशास्त्र सिखाता है कि परमेश्वर ने आत्मिक व्यक्तित्वों के साथ भी ब्रह्मांड को भरा है जिन्हें हम स्वर्गदूत और दुष्टात्माएं कहते हैं। स्वर्गदूतों और दुष्टात्माओं में बुद्धि होती है और वे ऐसे विवेकपूर्ण प्राणी हैं जिनमें इच्छाएं और व्यक्तित्व पाए जाते हैं।

जब परमेश्वर ने इन प्राणियों की रचना की तो वे सब स्वर्गदूत थे, वे शुद्ध और सिद्ध थे और स्वर्गीय राज्य में परमेश्वर की सेवा करते थे। परन्तु इनमें से कुछ स्वर्गदूतों ने अपनी इच्छा से परमेश्वर के विरूद्ध विद्रोह किया और उनका इस आशीषमयी अवस्था से दण्ड पाने की अवस्था में पतन हो गया। बाइबल सामान्यतः उन्हें स्वर्गदूत कहती है जो परमेश्वर के प्रति वफादार रहे, और प्रायः पाप में गिरे हुए विद्रोही दूतों को दुष्टात्माएं कहती है। स्वर्गदूत और दुष्टात्माएं इस प्राकृतिक संसार में होने वाली अनेक बातों पर प्रभाव डालते हैं।

हम हमारे नैतिक वातावरण में स्वगदूतों और दुष्टात्माओं द्वारा डाले जाने वाले प्रभाव पर ध्यान देंगे। दुष्टात्माओं के विषय को संबोधित करने से पहले आइए स्वर्गदूतों के विषय पर ध्यान दें।

स्वर्गदूत परमेश्वर के वफादार संदेशवाहकों या दूतों के रूप में कार्य करते हैं। वे उसकी बातों को मनुष्यों को बताते हैं, और वे परमेश्वर की ओर से मानवजाति के साथ बातचीत करते हैं। कई बार ये नाटकीय घटनाएं होती हैं। उदाहरण के तौर पर, 2राजाओं 19:35 में हम देखते हैं कि यहोवा के दूत ने यहूदा पर सनहेरिब के आक्रमण को रोकने के लिए असीरियाई सेना के एक लाख पिचयासी हजार सैनिकों को मारा। परन्तु अन्य स्थानों पर हम पाते हैं कि स्वर्गदूत अपने सामान्य कार्यों को ही करते हैं। उदाहरण के तौर पर, भजन 91:11-12 सिखाता है कि स्वर्गदूत परमेश्वर के विश्वासयोग्य अनुयायियों को ठोकर खाने से भी बचाता है।

इब्रानियों 1:14 इस प्रश्न को पूछने के द्वारा स्वर्गदूतों के महत्वपूर्ण कार्य को सारगर्भित करता है:

> क्या वे सब सेवा टहल करने वाली आत्माएं नहीं; जो उद्धार पाने वालों के लिये सेवा करने को भेजी जाती हैं? (इब्रानियों 1:14)

और इसका उत्तर निसंदेह, “हाँ” है। परन्तु इस सेवकाई का हमारे नैतिक निर्णयों से क्या संबंध है?

एक बात तो यह है कि परमेश्वर के दूत इस बात को आश्वस्त करने के लिए हमेशा कार्यरत् रहते हैं कि हमें सदैव नैतिक रूप से व्यवहार करने का अवसर मिले। उनके कार्य के द्वारा हम अपने प्रति परमेश्वर की देखभाल और उसकी उपलब्धताओं के प्रति और अधिक आश्वस्त हो जाएं। और यह आश्वासन हमें नैतिक निर्णय लेने में और अधिक उत्साहित करना चाहिए, चाहे ये निर्णय हमारे लिए और अधिक मुश्किलें पैदा करें।

इससे बढ़कर, परमेश्वर वास्तव में हमारे उद्धार का इस्तेमाल स्वर्ग में अपने स्वर्गदूतों को बुद्धि प्रदान करने में कर रहा है। स्वर्गदूतों को उद्धार की आवश्यकता नहीं है, और न ही उद्धार दुष्टात्माओं के लिए उपलब्ध है। फलस्वरूप, उद्धार उनके लिए रहस्यमयी है। अतः, मानवजाति के लिए परमेश्वर के उद्धार को देखने के द्वारा वे प्रभु की महिमा को और अधिक रूप से समझते हैं और उसकी स्तुति और अच्छी तरह से कर सकते हैं।

नया नियम इसके बारे में कई स्थानों में बात करता है, जैसे इफिसियों 3:10 जहां पौलुस ने इन शब्दों को लिखा:

> ताकि अब कलीसिया के द्वारा, परमेश्वर का नाना प्रकार का ज्ञान, उन प्रधानों और अधिकारियों पर, जो स्वर्गीय स्थानों में हैं प्रगट किया जाए। (इफिसियों 3:10)

जैसे कि हम पाप से पश्चाताप करते हैं और परमेश्वर के द्वारा आशीष पाते हैं, तो स्वर्गदूत उससे प्रभु के मार्गों को और अधिक सीखते हैं एवं उसकी और भी अधिक स्तुति करते हैं। अतः, हमारे नैतिक निर्णयों में ध्यान देने का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि किस प्रकार हमारे निर्णय स्वर्गदूतों को परमेश्वर की स्तुति और महिमा करने में प्रेरित करते हैं।

स्वर्गदूतों की इस धारणा को मन में रखते हुए, अब हमें हमारे ध्यान को दुष्टात्माओं एवं हमारी परिस्थिति में वास्तविकताओं के रूप में उनके द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका की ओर लगाएं।

स्वर्गदूतों के समान, दुष्टात्माएं भी प्राकृतिक क्षेत्र के साथ संबंध बनाती हैं, जो वे हमें हानि पहुंचाने के लिए करती हैं। नए नियम में दुष्टात्माएं सबसे सामान्य रूप में मसीहियों को मूर्तिपूजा में ढ़केलने के द्वारा आक्रमण करती हैं।

पवित्रशास्त्र यह भी दिखाता है कि दुष्टात्माएं हमें अन्य तरीकों से भी हानि पहुंचा सकती हैं। उदाहरण के तौर पर, अय्यूब 1-2 में हम पाते हैं कि शैतान, जो कि दुष्टात्माओं का मुखिया है, को अय्यूब की संपत्ति और उसके स्वास्थ्य को नाश करने एवं उसके परिवार को मार डालने की अनुमति दी गई थी। जैसा कि हम इन अध्यायों में पढ़ते हैं, यह एक असाधारण परिस्थिति थी जिसमें परमेश्वर ने शैतान को अय्यूब के जीवन को इतना प्रभावित करने की अनुमति दी थी। जैसे भी हो, यह हमें दिखाता है कि किस प्रकार के कार्य दुष्टात्माएं प्राकृतिक क्षेत्र में कर सकती हैं।

जैसा कि हम अगले भाग में देखेंगे, दुष्टात्माओं के कार्यों के हमारे जीवन पर कई प्रभाव हो सकते हैं। वे निरंतर हमें परीक्षा में डालती हैं और हमें नैतिक विकल्पों से दूर करने का प्रयास करती हैं। और इसी कारण हमें सदैव याद रखना चाहिए कि वे हमारी परिस्थिति में एक महत्वपूर्ण वास्तविकता हैं।

अब ऐसे अनगिनत नैतिक आशय हैं जो हम गैरलौकिक क्षेत्र के निवासियों के कार्यों से निकाल सकते हैं। परन्तु हमारे उद्देश्यों के लिए हम उस आत्मिक युद्ध पर ध्यान देंगे जो उनके बीच में चलता रहता है और किस प्रकार यह हमारे जीवनों को प्राकृतिक क्षेत्र में प्रभावित करता है।

आत्मिक युद्ध

जब से शैतान और शेष दुष्टात्माओं ने परमेश्वर के विरूद्ध विद्रोह किया है, तब से वे परमेश्वर के पवित्र स्वर्गदूतों से युद्ध में लगे हुए हैं। क्योंकि यह युद्ध भली और दुष्ट आत्माओं, अर्थात् स्वर्गदूतों और दुष्टात्माओं, के बीच लड़ा जाता है, इसलिए हम इसे आत्मिक युद्ध कहते हैं। पवित्रशास्त्र में इसका उल्लेख बार-बार किया जाता है, परन्तु सबसे जाना-पहचाना अनुच्छेद इफिसियों 6 में पौलुस द्वारा परमेश्वर के शस्त्र पहनने की शिक्षा है। इफिसियों 6:12 से पौलुस के शब्दों को सुनें:

> क्योंकि हमारा यह मल्लयुद्ध, लहू और मांस से नहीं, परन्तु प्रधानों से और अधिकारियों से, और इस संसार के अन्धकार के हाकिमों से, और उस दुष्टता की आत्मिक सेनाओं से है जो आकाश में हैं। (इफिसियों 6:12)

यहां पौलुस ने दर्शाया कि हमारे शत्रु इस संसार के अन्धकार के हाकिम और दुष्ट आत्मिक सेनाएं हैं जो कि गैरलौकिक क्षेत्र में रहते हैं। यह आत्मिक युद्ध भली और दुष्ट शक्तियों के बीच चलने वाला संघर्ष है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

इससे बढ़कर, यह हमें नैतिक रूपों में प्रभावित करता है जब स्वर्गदूत हमें परमेश्वर की आज्ञा मानने के मार्गों को खोजने में सहायता करते हैं और दुष्टात्माएं हमें पाप करने की परीक्षा में डालती हैं।

शुभ संदेश यह है कि यीशु ने दुष्टात्माओं की हम पर विजय पाने की शक्ति को तोड़ डाला है। अपनी मृत्यु और पुनरूत्थान के द्वारा, उसने हमारे सारे शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है। पौलुस ने कुलुस्सियों 2:15 में इन उत्साहवर्धक वचनों को लिखने के द्वारा हमें यह बात सिखाई है:

> और उस ने प्रधानताओं और अधिकारों को अपने ऊपर से उतार कर उन का खुल्लमखुल्ला तमाशा बनाया और क्रूस के कारण उन पर जयजयकार की ध्वनि सुनाई। (कुलुस्सियों 2:15)

परन्तु मसीह द्वारा युद्ध जीतने के बावजूद भी दुष्टात्माएं अब भी हमारे विरूद्ध लड़ती रहती हैं। और वे तब तक हम पर आक्रमण करती रहेंगी जब तक परमेश्वर अंत के दिन उनका न्याय नहीं कर देता। इसी कारण, हमें सचेत सैनिक बने रहना है, परमेश्वर के शस्त्रों को युद्ध के लिए पहने रखना है, और दुष्टात्माओं की सेना के विरूद्ध खड़े रहने के लिए सामर्थ पाने हेतु परमेश्वर के अनुग्रह पर निर्भर रहना है। हमें कभी नहीं भूलना चाहिए कि यह आत्मिक युद्ध हमारी नैतिक परिस्थिति में एक वास्तविक और शक्तिशाली घटक है।

अपने मन में गैरलौकिक संसार की इस धारणा को रखते हुए, अब हम प्राकृतिक, भौतिक संसार, जिसमें हम रहते हैं, के नैतिक आशयों को संबोधित करने के लिए तैयार हैं।

प्राकृतिक

प्राकृतिक संसार के विवरण असीमित हैं, इसलिए हम एक्य रूप में प्राकृतिक जगत पर हमारे ध्यान को लगाएंगे। पहला, हम सृष्टि के समय पर इसकी मूल स्थिति में प्राकृतिक संसार के स्थान के बारे में चर्चा करेंगे। दूसरा, हम देखेंगे कि किस प्रकार मानवजाति के पाप में पतन ने प्राकृतिक संसार को प्रभावित किया है। और तीसरा, हम उन बातों पर चर्चा करेंगे जो मानवजाति के पाप से छुटकारे से प्राकृतिक जगत को प्रभावित करेंगी। आइए, पहले हम सृष्टि और इसमें प्राकृतिक संसार द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका के विषय के साथ आरंभ करें।

सृष्टि

उत्पत्ति 1 में मूसा ने संपूर्ण प्राकृतिक क्षेत्र की भूमिका का वर्णन इस प्रकार से किया जिसने पृथ्वी पर मानवजाति के केन्द्रिय महत्व पर बल दिया। उसके वर्णन से हम देख सकते हैं कि मानवजाति प्रकृति का ही भाग है। उत्पत्ति 2:7 के अनुसार परमेश्वर ने हमें भूमि की मिट्टी से बनाया। और क्योंकि हम प्रकृति के भाग हैं, इसलिए इसकी सुरक्षा करने का हमारा नैतिक कर्त्तव्य है।

मूसा ने यह भी स्पष्ट किया कि मानवजाति प्रकृति की स्वामी है। परमेश्वर ने हमें पेड़-पौधों और जानवरों के समान नहीं बनाया, बल्कि उनके ऊपर अधिकार रखने के लिए बनाया है। उत्पत्ति 1:28 के शब्दों को सुनें:

> और परमेश्वर ने उन को आशीष दी; और उन से कहा, फूलो-फलो, और पृथ्वी में भर जाओ, और उसको अपने वश में कर लो; और समुद्र की मछलियों, तथा आकाश के पक्षियों, और पृथ्वी पर रेंगने वाले सब जन्तुओं पर अधिकार रखो। (उत्पत्ति 1:28)

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

आरंभ से ही परमेश्वर ने मानवजाति को संसार पर शासन करने के लिए बुलाया- अर्थात् ऐसा संचालन करने के लिए बुलाया जो जीवन और विकास को आगे बढ़ाए, और संसार को एक ऐसे राज्य में बदल दे जो मानवजाति के निवास के लिए उपयुक्त हो।

अब जब हमने सृष्टि के समय में प्राकृतिक क्षेत्र की मूल अवस्था को देख लिया है, इसलिए अपने ध्यान को हम मानवजाति के पाप में पतन और विशेषकर प्राकृतिक संसार पर इसके प्रभाव पर ध्यान दें।

पतन

जब आदम और हव्वा पाप में गिरे, तो परमेश्वर ने मानवजाति और पृथ्वी दोनों को श्राप देने के द्वारा प्रत्युत्तर दिया। इस कारण पृथ्वी ने कई रूपों में मानवजाति के स्वामित्व का विरोध किया। उदाहरण के लिए, मानवजाति के लिए भोजन का उत्पादन करने हेतु भूमि पर कार्य करना मुश्किल हो गया। हम इसे उत्पत्ति 3:17-19 में पढ़ते हैं जहां परमेश्वर ने आदम को यह श्राप दिया:

> भूमि तेरे कारण शापित है; तू उसकी उपज जीवन भर दुःख के साथ खाया करेगा; और वह तेरे लिये कांटे और ऊंटकटारे उगाएगी, और तू खेत की उपज खाएगा; और अपने माथे के पसीने की रोटी खाया करेगा, और अन्त में मिट्टी में मिल जाएगा; क्योंकि तू उसी में से निकाला गया है, तू मिट्टी तो है और मिट्टी ही में फिर मिल जाएगा। (उत्पत्ति 3:17-19)

इस श्राप के फलस्वरूप, प्राकृतिक संसार कई रूपों में पाप से प्रभावित है। हम इस रूप में प्राकृतिक क्षेत्र की परिस्थिति को सारगर्भित कर सकते हैं: प्रकृति परमेश्वर के श्राप को पाने वाली और परमेश्वर के श्राप का कारण दोनों हैं। अर्थात् प्रकृति पाप के द्वारा भ्रष्ट है और प्रायः हमारी विरोधी है। ये हमारी प्राकृतिक परिस्थिति के महत्वपूर्ण विवरण हैं जिन पर नैतिक शिक्षा में ध्यान देना जरूरी है। प्रकृति आज वैसी नहीं हैं जैसी इसे मूल रूप में बनाया गया था; यह प्रायः हमारे नैतिक निर्णयों को जटिल बनाती है क्योंकि यह पाप के द्वारा भ्रष्ट है और यह हमें अनुशासित करने के लिए परमेश्वर के साधन के रूप में प्रायः कार्य करती है।

इसके साथ-साथ, प्राकृतिक संसार पतन के कारण पूरी तरह से भ्रष्ट नहीं हुआ है। पृथ्वी आज भी परमेश्वर की है, और उसके साथ-साथ इसकी सब वस्तुएं भी। यह आज भी परमेश्वर की भलाई और उसके वैभव की घोषणा करती हैं, और परमेश्वर आज भी हमें बहुत सी अच्छी चीजें प्रदान करने के लिए इसका इस्तेमाल करता है। जैसा कि हम भजन 19:1 में पढ़ते हैं:

> आकाश ईश्वर की महिमा वर्णन कर रहा है; और आकशमण्डल उसकी हस्तकला को प्रगट कर रहा है। (भजन संहिता 19:1)

और जैसा कि पौलुस ने 1 तीमुथियुस 4:4-5 में लिखा:

> क्योंकि परमेश्वर की सृजी हुई हर एक वस्तु अच्छी है; और कोई वस्तु अस्वीकार करने के योग्य नहीं; पर यह कि धन्यवाद के साथ खाई जाए। क्योंकि परमेश्वर के वचन और प्रार्थना से शुद्ध हो जाती है। (1तीमुथियुस 4:4-5)

प्रकृति आज भी भली है, और यह आज भी वह साधन जिसका इस्तेमाल परमेश्वर हमारे बीच कार्य करने और हमें आशीष देने के लिए करता है। अतः जब हम नैतिक प्रश्नों का सामना करते हैं, तो हमें सदैव

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रकृति का भ्रष्टाचार और उसकी आशीषें हमारी परिस्थिति की महत्वपूर्ण विशेषताएं बनी हुई हैं।

सृष्टि एवं पाप में पतन के विषय में प्रकृति के बारे में बात करने के बाद हम छुटकारे के विषय एवं छुटकारे के इतिहास में प्राकृतिक क्षेत्र की भूमिका की ओर मुड़ने के लिए तैयार हैं।

छुटकारा

जब मानवजाति का पाप में पतन हुआ तो प्राकृतिक क्षेत्र श्राप का कारण और श्राप को प्राप्त करने वाला बन गया। परन्तु छुटकारे में इन दोनों प्रभावों को उलट दिया गया। फिर प्राकृतिक क्षेत्र छुटकारे का कारण बन जाता है जब परमेश्वर मानवजाति के छुटकारे को पूरा करने के लिए प्राकृतिक क्षेत्र के भीतर कार्य करता है। और यह छुटकारे को प्राप्त करने वाला भी बन जाता है, जब परमेश्वर मानवजाति के छुटकारे के माध्यम से प्राकृतिक संसार को भ्रष्टाचार से मुक्त करता है।

प्रकृति कई रूपों में छुटकारे के माध्यम के रूप में काम करता है। एक यह है कि परमेश्वर प्राकृतिक क्षेत्र की वस्तुओं को छुटकारे की प्रक्रिया में साधनों के रूप में प्रयोग करता है। प्राकृतिक क्षेत्र की घटनाएं परमेश्वर की महानता की साक्षी देती हैं। वे हमारे समक्ष उद्धार के लिए उस पर विश्वास करने के अवसर प्रस्तुत करते हैं। और वे हमें ऐसी परिस्थितियों में रखते हैं जो आत्मिक बढ़ोतरी एवं विजय की ओर हमारी अगुवाई करती हैं। दूसरा यह है कि परमेश्वर कभी-कभी चमत्कारिक रूप से सामान्य एवं प्राकृतिक क्रम को निरस्त कर देता है, और प्रकृति को ऐसे परिवर्तित करता है कि यह हमारे समक्ष ऐसे चिन्ह और चमत्कार प्रस्तुत करता है जो हमारे विश्वास को बढ़ाता है। रोमियों 8:28 पर ध्यान दें जहां पौलुस ने इन शब्दों को लिखा:

> और हम जानते हैं, कि जो लोग परमेश्वर से प्रेम रखते हैं, उन के लिये सब बातें मिलकर भलाई ही को उत्पन्न करती है; अर्थात उन्हीं के लिये जो उस की इच्छा के अनुसार बुलाए हुए हैं। (रोमियों 8:28)

"सब बातों" से पौलुस का अर्थ था हर परिस्थिति, हर घटना, हर प्राणी, हर वस्तु, हर विचार- सब कुछ। और इसमें वह सब भी शामिल है जो इस प्राकृतिक संसार में है और घटित होता है। परमेश्वर हमारे छुटकारे को आगे बढ़ाते हुए हमारी भलाई के लिए इन सबको नियंत्रित रखता है।

अतः जब हमारे समक्ष नैतिक विकल्प आते हैं तो हमें ऐसे प्रश्न पूछने चाहिए, प्राकृतिक संसार के मेरे अनुभव के द्वारा परमेश्वर मुझे क्या सिखा रहा है? प्राकृतिक संसार के साथ मेरे संबंध किस प्रकार मुझे मसीह के समान और अधिक बनने में सहायता कर सकते हैं? और मैं किस प्रकार परमेश्वर को महिमा देने में प्राकृतिक संसार का इस्तेमाल कर सकता हूँ?

इससे बढ़कर, प्राकृतिक क्षेत्र स्वयं भी अंत में छुटकारे को प्राप्त करने वाला बनेगा। परमेश्वर स्वर्ग और पृथ्वी दोनों को शुद्ध करेगा कि एक नए स्वर्ग और नई पृथ्वी बनाए। पवित्रशास्त्र इस सृष्टि का उल्लेख कई स्थानों पर करता है, जैसे यशायाह 65:17, यशायाह 66:22, 2 पतरस 3:13, और प्रकाशितवाक्य 21:1। इस प्रकार के अनुच्छेद दर्शाते हैं कि प्राकृतिक संसार का भ्रष्टाचार तब तक जारी रहेगा जब तक मसीह के पुनरागमन के समय मानवजाति का छुटकारा पूर्ण नहीं हो जाता। उस समय पृथ्वी को ऐसे महिमामय गन्तव्य तक पहुँचाया जाएगा जिसे परमेश्वर ने आरंभ से ही निर्धारित किया था। पौलुस ने इसके बारे में रोमियों 8:19-21 में लिखा जहां पर हम इन शब्दों को पढ़ते हैं:

> क्योंकि सृष्टि बड़ी आशाभरी दृष्टि से परमेश्वर के पुत्रों के प्रगट होने की बाट जोह रही है... सृष्टि भी आप ही विनाश के दासत्व से छुटकारा पाकर, परमेश्वर की सन्तानों की महिमा की स्वतंत्रता प्राप्त करेगी। (रोमियों 8:19-21)

यह वास्तविकता कि परमेश्वर प्राकृतिक संसार को छुटकारा दे रहा है, दर्शाता है कि वह इसे बहुत महत्व देता है। अतः, जब हम नैतिक निर्णय लेते हैं तो हमें इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि किस प्रकार हमारे चुनाव या निर्णय प्राकृतिक सृष्टि को प्रभावित करेंगे। और इसका अर्थ है कि हमें ऐसे प्रश्न पूछने चाहिए: मेरे निर्णयों का प्राकृतिक संसार पर क्या प्रभाव पड़ेगा? मैं किस प्रकार से पृथ्वी पर मानवजाति के अधिकार को बढ़ा और निखार सकता हूँ? और मैं किस प्रकार से संसार को ऐसे ढ़ाल सकता हूँ जो परमेश्वर की महिमामयी उपस्थिति के लिए उपयुक्त हो? जब कभी भी हमारा सामना नैतिक प्रश्न से होता है, तो हमें उन तरीकों को ध्यान में रखना चाहिए जिनमें सृष्टि हम पर प्रभाव डालती है। और हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि किस प्रकार हमारे कार्य सृष्टि को भी प्रभावित करते हैं।

हम यहां पर स्वयं परमेश्वर के बारे में कुछ आधारभूत वास्तविकताओं एवं सामान्य रूप में सृष्टि की वास्तविकताओं को भी देख चुके हैं, अतः अब हम मानवजाति से संबंधित वास्तविकताओं पर ध्यान देने के लिए तैयार हैं, जो कि परमेश्वर की सृष्टि का शिरोमणि है।

मानवजाति

हम दो रूपों में मानवजाति से संबंधित वास्तविकताओं को संबोधित करेंगे। पहला, हम मानवजाति को समाज के संदर्भ में देखेंगे, और उन वास्तविकताओं को देखेंगे जो हमारे दूसरों के साथ रहने के प्रयासों से संबंधित होती हैं। और दूसरा, हम मानवजाति को एक्य प्राणी के रूप में देखेंगे, और अपने साथ रहने के प्रयासों पर ध्यान देंगे। आइए इस समय हम हमारे ध्यान को मानवीय समाज पर लगाएं जो हमारी परिस्थिति की महत्वपूर्ण विशेषता है।

समाज

हम समाज के तीन पहलुओं को देखेंगे जो मसीही नैतिक शिक्षा के हमारे अध्ययन से संबंधित है। पहला, हम मानवीय समाज की संगठित एकजुटता पर ध्यान देंगे, ठीक वैसे ही जैसे परमेश्वर मानवजाति को एक संगठित समूह के रूप में देखता है। दूसरा, हम हमारे साझे अनुभवों की समानता के बारे में संक्षिप्त रूप से बात करेंगे। और तीसरा, हम मानवीय समुदाय का उल्लेख करेंगे। आइए पहले हम मानवीय समाज की एकजुटता की ओर देखें जब हम परमेश्वर के सामने खड़े होते हैं।

एकजुटता

मानवजाति की संगठित एकजुटता के विषय में हमारी चर्चा में हम सांस्कृतिक आदेश के बारे में एक संगठित कार्य के रूप में बात करेंगे जो मानवजाति को सृष्टि के समय दिया गया था। और हम पतन के बारे में यह कहेंगे कि वह एक संगठित असफलता थी जिसका परिणाम भी संगठित रहा। अंत में, हम छुटकारे को

मानवीय समाज के संगठित पुनर्निमाण के रूप में देखेंगे। आइए पहले हम सृष्टि के भीतर ही मानवजाति के संगठित कार्य, अर्थात् सांस्कृतिक आदेश के बारे में सोचें।

पिछले अध्याय में हमने सांस्कृतिक आदेश को परमेश्वर की उस आज्ञा के बारे में बताया था कि मानवजाति को मानवीय संस्कृति के विकास के माध्यम से पूरी पृथ्वी पर परमेश्वर के राज्य को बढ़ाना है। यह आदेश सीधे तौर पर आदम और हव्वा को दिया गया जब उनकी रचना की गई थी। उत्पत्ति 1:28 में हमारे प्रथम अभिभावकों को कहे गए परमेश्वर के वचनों को सुनें:

> फूलो-फलो, और पृथ्वी में भर जाओ, और उसको अपने वश में कर लो (उत्पत्ति 1:28)

निसंदेह, परमेश्वर का यह इरादा नहीं था कि आदम केवल पिता बने और हव्वा इतनी संतानें उत्पन्न करे कि वह लोगों और संस्कृतियों से पूरी पृथ्वी को भर दे। बल्कि, उसने चाहा था कि वे मानवजाति की पीढ़ियों के पहलौठे बनें। और उसका इरादा था कि मानवजाति संगठित रूप से इस आदेश को पूरा करे।

फलस्वरूप, सारी मानवजाति की एक-दूसरे से एकजुटता है। अर्थात्, परमेश्वर ने मानवजाति को एकसाथ मिलकर इस पृथ्वी को भरने और इस पर अधिकार करने का कार्य दिया है। परन्तु परमेश्वर ने हर व्यक्ति को सांस्कृतिक आदेश का हर पहलू नहीं दिया है। सांस्कृतिक आदेश संपूर्ण मानवजाति को एकजुट रूप में जिम्मेदारी देता है कि वह संतान उत्पन्न करे और संस्कृतियों को बढ़ाए। और अलग-अलग लोगों की नैतिक जिममेदारी इतनी है कि वे अपनी भूमिका अदा करें, और इस संगठित कार्य को पूरा करने में संपूर्ण मानवजाति के साथ सहयोग करें।

सांस्कृतिक आदेश में यह संगठित एकजुटता हमें नैतिक शिक्षा के बारे में कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण सिखाती है। यह हमें सिखाता है कि आरंभ से ही परमेश्वर ने मनुष्यों से अपेक्षा की है कि वे व्यक्तिगत निर्णय लेते समय दूसरे लोगों के बारे में भी सोचें। हमें यह ध्यान रखना है कि हमारे निर्णय किस प्रकार उन्हें प्रभावित करेंगे, और यह भी कि हम किस प्रकार पृथ्वी के छोर तक परमेश्वर के राज्य को बढ़ाने के हमारे संगठित कार्य को पूरा करने में एक साथ काम कर सकते हैं।

मानवजाति के संगठित कार्य को मन में रखते हुए, आइए हमारी संगठित असफलता के विषय में बात करें जब मानवजाति का पाप में पतन हो गया था।

जब परमेश्वर ने आदम और हव्वा की रचना की, तो उसने उन्हें सांस्कृतिक आदेश का संगठित कार्य दिया। परन्तु उसने उन्हें व्यक्तिगत कार्य भी दिए जिसने उनके संगठित कार्य की सफलता में योगदान दिया। फिर जब उनका पतन हुआ तो आदम और हव्वा ने अपने-अपने व्यक्तिगत कार्यों की अवहेलना की, और इसी प्रक्रिया में उन्होंने अपने संगठित कार्य की अवहेलना की।

इस प्रकार से पतन में व्यक्तिगत रूप केवल आदम और हव्वा के पाप ही शामिल नहीं थे, बल्कि उनके रिश्ते, और परमेश्वर द्वारा स्थापित पारिवारिक संरचना का टूटना भी शामिल था।

पतन एक संगठित असफलता था, इस वास्तविकता के मसीही नैतिक शिक्षा पर दूरगामी प्रभाव रहे। इसका अर्थ है कि हमारी जिम्मेदारी व्यक्तिगत आधार पर ही नैतिक रूप से शुद्ध बनना नहीं है, बल्कि दूसरे लोगों की नैतिकता को भी बढ़ाना है। यह दिखाता है कि हमें परिवारों और समाजों को बनाना है और उन रिश्तों में नैतिक क्रियाओं को स्थापित करना है। और यह हमें सिखाता है कि हमें उन रिश्तों से आने वाली परीक्षाओं से भी चौकस रहना है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

हमने यहां पर मानवजाति के संगठित कार्य और उस कार्य में हमारी संगठित असफलता पर चर्चा कर ली है, इसलिए अब हमें हमारा ध्यान मानवजाति के पाप में पतन के संगठित परिणामों की ओर लगाना चाहिए।

पतन के संगठित परिणामों को समझने में यह याद रखना हमारी सहायता करता है कि जब परमेश्वर ने आदम और हव्वा की रचना की तो उसने उनके साथ एक वाचा बांधी। अन्य बातों के बीच, इस वाचा ने आदम और हव्वा से परमेश्वर की आज्ञा मानने की मांग की, और इसने आज्ञाकारिता एवं अनाज्ञाकारिता के परिणामों को भी परिभाषित किया। परन्तु इस वाचा ने आदम और हव्वा के साथ व्यक्तिगत लोगों के रूप में परमेश्वर के रिश्ते को संचालित नहीं किया। बल्कि, इसने आदम और हव्वा को सामूहिक रूप से संचालित किया। वास्तव में, पवित्रशास्त्र सिखाता है कि प्रत्येक व्यक्ति जो इस पृथ्वी पर रहा है या रहेगा, वह इस वाचा में शामिल था।

अतः, जब आदम और हव्वा ने भले और बुरे के ज्ञान के वृक्ष में से खाने के द्वारा परमेश्वर की वाचा का उल्लंघन किया तो उनकी अनाज्ञाकारिता का परिणाम केवल उन पर ही नहीं पड़ा, बल्कि उनके भावी वंश पर भी। मानवजाति की संगठित एकजुटता के कारण इस एक अपराध ने मानवजाति के हर व्यक्ति को वाचायी श्राप में डाल दिया। जैसे कि पौलुस ने रोमियों 5:18 में सारगर्भित किया:

> एक अपराध सब मनुष्यों के लिये दण्ड की आज्ञा का कारण हुआ (रोमियों 5:18)

इसका एकमात्र अपवाद यीशु था, जो आदम और हव्वा के वंश से जन्म लेने की सामान्य प्रक्रिया से नहीं आया, बल्कि मरियम के गर्भ में पवित्र आत्मा के द्वारा रखा गया। जब आदम ने पाप किया तो प्रत्येक व्यक्ति वाचायी श्रापों में गिर गया।

पतन के परिणाम के रूप में, हम सब भी मृत्यु के परमेश्वर के श्राप के अधीन जन्म लेते हैं, और अनन्त दंड की ओर बढ़ते हैं। और दोषी के रूप में जन्म लेने के अतिरिक्त हमारा जन्म भी भ्रष्ट रूप में हुआ है, एवं पाप हमारे अन्दर रहता है और हमें गुलाम बनाता है एवं किसी भी भले काम करने में अयोग्य बनाता है। जैसा कि पौलुस ने रोमियों 8:7-8 में लिखा:

> क्योंकि शरीर पर मन लगाना तो परमेश्वर से बैर रखना है, क्योंकि न तो परमेश्वर की व्यवस्था के आधीन है, और न हो सकता है। और जो शारीरिक दशा में है, वे परमेश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकते। (रोमियों 8:7-8)

वास्तव में, पतन के परिणाम इतने अधिक गंभीर हैं कि परमेश्वर के छुटकारे के कार्य के अतिरिक्त और कोई भी तरीका नहीं है कि हम किसी भी तरह से नैतिक रूप से कुछ सोच, कह या कर सकें।

क्योंकि हम पाप के द्वारा इतने भ्रष्ट हैं कि हमें सदैव अपने नैतिक बोध और भावनाओं पर ध्यान रखना पड़ता है। हम यह कल्पना करते हुए हमारे हृदयों का अनुसरण नहीं कर सकते वे सदैव नैतिक शुद्धता की ओर हमारी अगुवाई करेंगे।

पाप की इस सार्वभौमिक समस्या का एक परिणाम यह है कि मानवजाति उस रूप में सांस्कृतिक आदेश को पूरा नहीं करती जैसे परमेश्वर चाहता है। हम सारे संसार में मानवीय सभ्यता को बनाते और उसका विस्तार करते हैं, परन्तु हमारे अन्दर वास करने वाला पाप सामान्यतः हमसे ऐसे कार्य करवाता है जो परमेश्वर को सम्मान और महिमा नहीं देते।

पृथ्वी पर परमेश्वर के राज्य को बढ़ाने के कार्य में हमें एक-दूसरे की सहायता करनी चाहिए, परन्तु पाप की भ्रष्टता हमें बाधाओं में परिवर्तित कर देती है। फलस्वरूप, जब हम परमेश्वर को महिमा देने का प्रयास करते हैं, तो हमें न केवल उसके राज्य को बढ़ाने के लिए सकारात्मक रूप से कार्य करना है, बल्कि हमें पाप के प्रति भी सचेत बने रहना है। हमें हमारे और हमारे चारों ओर के लोगों के उद्देश्यों और व्यवहारों को जांचना और साबित करना जरूरी है।

मानवजाति के संगठित कार्य और संगठित असफलता और उस असफलता के सामूहिक परिणामों पर ध्यान देने के बाद, आइए हम हमारी मानवीय सामाजिक संरचनाओं के संगठित पुनर्निर्माण की ओर मुड़ें।

आधुनिक संसार में, मसीहियों के लिए उद्धार के व्यक्तिगत पहलुओं पर ध्यान देना आम बात है- जैसे कि पाप की क्षमा, लोगों के लिए अनन्त जीवन। परन्तु जैसा कि हमने पिछले अध्यायों में देखा था, सृष्टि के लिए परमेश्वर की योजना केवल विश्वासी लोगों के एक समूह को बचाना ही नहीं है। बल्कि, एक राज्य को बनाना है; एक नई सामाजिक संरचना एवं नए लोगों के साथ भरा हुआ एक समाज बनाना है। 1पतरस 2:9 को सुनें जहां पतरस ने कलीसिया का विवरण संगठित रूप में किया:

> पर तुम एक चुना हुआ वंश, और राज-पदधारी याजकों का समाज, और पवित्र लोग, और (परमेश्वर की) निज प्रजा हो। (1पतरस 2:9)

परमेश्वर केवल लोगों को छुटकारा ही नहीं दे रहा है। बल्कि वह एक प्रजा, एक याजकवर्ग, एक राष्ट्र को छुड़ा रहा है। अर्थात् वह लोगों को छुटकारा दे रहा है और उन्हें छुटकारा पाए हुए समाजों में रख रहा है।

हम सब जानते हैं कि यीशु हमारा राजा है, और कि हम उसका राज्य हैं। और हम सब पहचानते हैं कि उसने आज तक अपने लोगों के लिए सामाजिक एवं अधिकारपूर्ण संरचनाएं स्थापित की हैं, जैसे कि परिवार और कलीसिया। और जब यीशु भविष्य में लौटेगा, तो संगठित सामाजिक संरचनाएं भी पूरी तरह से छुटकारा प्राप्त करेंगी। और ये वास्तविकताएं हमारे नैतिक निर्णयों के लिए महत्वपूर्ण हैं। हमें न केवल अपने व्यक्तिगत छुटकारे पर ध्यान देना है बल्कि परमेश्वर का भय मानने वाली सामाजिक संरचनाओं पर भी, जैसे परिवारों, कलीसियाओं और राष्ट्रों, जो कि उस महान् राज्य का भाग हैं जो परमेश्वर पृथ्वी पर बना रहा है।

हमने यहां परमेश्वर के साथ हमारे व्यवहार में मानवजाति की संगठित एकजुटता को स्पष्ट कर दिया है, इसलिए अब हमें हमारे मानवीय अनुभवों की समानता से जुड़ी वास्तविकताओं पर ध्यान देना चाहिए।

समानता

मानवजाति के भीतर ही हम लोगों के कई छोटे-छोटे समूहों में विभाजित हैं। हम राष्ट्रों, संस्कृतियों, उप-संस्कृतियों, कलीसियाओं, परिवारों आदि के सदस्य हैं। हमारे इतिहास केवल लोगों की कहानियां नहीं हैं बल्कि राष्ट्रों और लोकसमूहों के विवरण हैं। हम परिवारों और देशों जैसी सामाजिक संरचनाओं में रहते हैं और स्वयं को संचालित करते है। और हमारे अन्दर साझी संस्कृतियां हैं जो हमें पौशाक, भोजन, संगीत, कला, वास्तुकला आदि में बांधे रखती हैं। इन सारे सामाजिक समूहों में आधारभूत समानताएं हैं जो समूह को एकसाथ बांधती हैं। जब हम नैतिक निर्णय लेते हैं तो इन समानताओं और भिन्नताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

इस विचार का एक संक्षिप्त सार 1कुरिन्थियों 9:20-22 में पाया जाता है जहां पौलुस ने इन शब्दों को लिखाः

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

> जो लोग व्यवस्था के आधीन हैं उन के लिये मैं व्यवस्था के आधीन न होने पर भी व्यवस्था के आधीन बना,... व्यवस्थाहीनों के लिये मैं (जो परमेश्वर की व्यवस्था से हीन नहीं, परन्तु मसीह की व्यवस्था के आधीन हूँ) व्यवस्थाहीन सा बना... मैं सब मनुष्यों के लिये सब कुछ बना हूँ, कि किसी न किसी रीति से कई एक का उद्धार कराऊं। (1कुरिन्थियों 9:20-22)

पौलुस ने सिखाया कि हमारे चारों ओर के लोगों के साझे अनुभवों के साथ हमारे व्यवहार को अनुकूल बना लेना हमारे लिए महत्वपूर्ण है। उसने मानवीय सामाजिक संदर्भों पर ध्यान दिया जिसमें उसने स्वयं को पाया, और उसने जो देखा उसके संदर्भ में अपने व्यवहार को बदला। उदाहरण के तौर पर, उसने यहूदी वातावरण में यहूदी परंपराओं का पालन किया और गैरयहूदी वातावरण में गैरयहूदी परंपराओं का। निसंदेह, उसने इस बात का ध्यान रखा कि वह पवित्रशास्त्र का उल्लंघन न करे। परन्तु जहां तक संभव हो, उसने परमेश्वर की व्यवस्था के आशयों को अपने चारों ओर के लोगों के अनुभवों के साथ जोड़ने का प्रयास किया। और उसके उदाहरण का अनुसरण करते हुए हमें भी वैसा करना चाहिए।

परमेश्वर के समक्ष मानवजाति की संगठित एकजुटता, और हमारे मानवीय अनुभवों की समानता के महत्व के बारे में बात करने के बाद, अब हम समुदाय के विषय, अर्थात् मानवजाति, या छोटे समूहों के सदस्य या व्यक्तिगत लोगों के रूप में एक दूसरे के साथ हमारे सामान्य संबंधों से जुड़ी वास्तविकताओं पर ध्यान देने के लिए तैयार हैं।

समुदाय

हम समुदाय के विषय को दो भागों में विभाजित करेंगे। पहला, हम उस प्रभाव पर ध्यान देंगे जो मानवजाति एकदूसरे पर डालती है। और दूसरा, हम उन जिम्मेदारियों को संबोधित करेंगे जो हम एकदूसरे के लिए उठाते हैं। आइए उस प्रभाव के साथ आरंभ करें जो लोग अपने समुदाय के भीतर दूसरों पर डालते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि लोगों के निर्णय और कार्य प्रायः चारों ओर के लोगों को प्रभावित करते हैं। जब ये निर्णय और कार्य पवित्रशास्त्र की शिक्षाओं के अनुरूप होते हैं तो वे दूसरों को ऐसे प्रभावित करते हैं जिससे कि परमेश्वर की महिमा हो। जब वे अनुरूप नहीं होते तो वे दूसरों को ऐसे प्रभावित करते हैं जो पापों को बढ़ावा देते हैं। हम हमारे समुदाय में अनेक रूपों में दूसरों को प्रभावित करते हैं। परन्तु इस अध्याय की सीमा में हम हमारी चर्चा को उस प्रभाव तक ही सीमित रखेंगे जो कलीसिया में विश्वासी एकदूसरे पर डालते हैं।

1कुरिन्थियों 12:26-27 में पौलुस ने मानवीय देह के रूपक का इस्तेमाल करते हुए उस प्रभाव का वर्णन किया जो मसीही एकदूसरे पर डालते हैं। सुनिए उसने वहां पर क्या लिखा:

> इसलिये यदि एक अंग दुःख पाता है, तो सब अंग उसके साथ दुःख पाते हैं, और यदि एक अंग की बड़ाई होती है, तो उसके साथ सब अंग आनन्द मनाते हैं। इसी प्रकार तुम सब मिल कर मसीह की देह हो, और अलग अलग उसके अंग हो। (1कुरिन्थियों 12:26-27)

इस अनुच्छेद में पौलुस ने सिखाया कि मसीहियों को एकदूसरे के साथ सम्मान और आदर का व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि जो एक मसीही के साथ होता है वह इस संसार में दूसरे विश्वासी को भी प्रभावित करता है। इस भाव में जो प्रभाव हम एकदूसरे पर डालते हैं वह बहुत बड़ा होता है, इसलिए जब भी

हम निर्णय लेते हैं तो हमें पूरी कलीसिया को ध्यान में रखना चाहिए। अन्य विश्वासियों पर हमारे कार्यों के प्रभाव को जितना हम निर्धारित कर सकते हैं, उतने ही हमें वैसे निर्णय लेने चाहिए जो उन्हें लाभ पहुंचाए और उन्हें चोट न पहुंचाए, एवं उन्हें नैतिक रूपों में व्यवहार करने के लिए प्रेरित करे।

पौलुस ने इसका एक बहुत ही ठोस उदाहरण 1कुरिन्थियों 8 में दिया जहां उसने मूर्तियों के सामने चढ़ाए हुए भोजन के बारे में निर्देश दिए। सामान्य रूप में, उसने सिखाया कि मसीही ऐसा भोजन खा सकते हैं। परन्तु उसने इसमें यह बात भी जोड़ी कि यदि इस भोजन को खाने से अन्य विश्वासी मूर्तिपूजा के पाप में गिरते हैं तो मसीहियों को ऐसे भोजन को खाने से बचना चाहिए। सुनिए उसने 1कुरिन्थियों 8:13 में क्या लिखा:

> इस कारण यदि भोजन मेरे भाई को ठोकर खिलाए, तो मैं कभी किसी रीति से मांस न खाऊंगा, न हो कि मैं अपने भाई के ठोकर का कारण बनूं। (1कुरिन्थियों 8:13)

हमारे निर्णय बाइबल पर आधारित हों, इसके लिए हमें दूसरों पर हमारे कार्यों के प्रभावों पर ध्यान देना जरूरी है।

एकदूसरे पर हमारे प्रभाव के महत्व को जानने के लिए हमें हमारे ध्यान को जिम्मेदारियों के विषय पर लगाएंगे जो हमारी एकदूसरे के प्रति हैं। जैसा हमने एकदूसरे पर प्रभाव डालने की चर्चा में किया था, वैसे ही हम उन जिम्मेदारियों पर ही ध्यान देंगे जो हम कलीसिया में एकदूसरे के प्रति निभाते हैं।

पवित्रशास्त्र कई स्थानों पर हमें एकदूसरे के प्रति जिम्मेदारियों को सिखाता है। अतः उदाहरण के लिए हम एकदूसरे से प्रेम करने की प्रभु की आज्ञा पर ध्यान देंगे। इस आज्ञा का उल्लेख पवित्रशास्त्र में बार-बार किया गया है, परन्तु आइए देखें कि यूहन्ना ने इसे अपनी पहली पत्री में कैसे कहा है। 1यूहन्ना 3:11-18 के शब्दों को सुनें:

> हम एक दूसरे से प्रेम रखें... हम ने प्रेम इसी से जाना, कि उस ने हमारे लिये अपने प्राण दे दिए; और हमें भी भाइयों के लिये प्राण देना चाहिए। पर जिस किसी के पास संसार की संपत्ति हो और वह अपने भाई को कंगाल देख कर उस पर तरस न खाना चाहे, तो उस में परमेश्वर का प्रेम क्योंकर बना रह सकता है? हे बालकों, हम वचन और जीभ ही से नहीं, पर काम और सत्य के द्वारा भी प्रेम करें। (1यूहन्ना 3:11-18)

यूहन्ना ने दर्शाया कि हमारी जिम्मेदारी भी एकदूसरे से वैसे ही प्रेम करने की है जैसा यीशु ने हमसे किया था। और यह जिम्मेदारी संपूर्ण जीवनभर की है। यह हमारे समय, धन, संपत्ति और हमारे जीवनों की भी मांग करती है। और यह ऐसी जिम्मेदारी है जो हमारे सारे नैतिक निर्णयों में दिखनी चाहिए।

यहां पर हमने मानवीय समाज में दूसरों के साथ जीवन जीने से संबंधित वास्तविकताओं को संबोधित कर लिया है, इसलिए अब हम हमारे ध्यान को व्यक्तिगत लोगों के रूप में स्वयं पर लगाने के लिए तैयार हैं।

व्यक्तिगत लोग

जैसा कि हम देख चुके हैं कि लोगों में बहुत सी बातें एक जैसी होती हैं। हम सब एक ही परमेश्वर के प्रति उत्तरदायी हैं। हम सब एक ही प्राकृतिक संसार में रहते हैं और एक ही तरह की गैरलौकिक शक्तियों से प्रभावित होते हैं। और हम समाजों में हमारे समान कई अन्य लोगों के साथ रहते हैं। परन्तु ऐसे कई महत्वपूर्ण रूप भी हैं जिनमें प्रत्येक व्यक्ति अलग है। हम सबके व्यक्तित्व अलग-अलग हैं, अलग-अलग इतिहास हैं,

अलग-अलग योग्यताएं आदि हैं। और ये व्यक्तिगत भिन्नताएं महत्वपूर्ण वास्तविकताएं बन जाती हैं जब हम नैतिक विकल्पों के सामने होते हैं।

व्यक्तिगत लोगों के रूप में हम मानवजाति से जुड़ी चार प्रकार की वास्तविकताओं के बारे में बात करेंगे। पहली, हम व्यक्तिगत चरित्र के बारे में बात करेंगे। दूसरी, हम हर व्यक्ति के अनुभवों के महत्व का उल्लेख करेंगे। तीसरी, हम मानव शरीर के विषय और उसके प्रभाव को संबोधित करेंगे। और चौथी, हम प्रत्येक को परमेश्वर द्वारा दी गई भूमिका के महत्व पर ध्यान देंगे। आइए हमारी परिस्थिति में एक महत्वपूर्ण वास्तविकता के रूप में व्यक्तिगत चरित्र के साथ आरंभ करें।

चरित्र

जब हम चरित्र के बारे में बात करते हैं, तो हमारे मन में व्यक्तिगत प्रमुखताएं और परीक्षाएं एवं हमारी धार्मिकता जैसी बातें आती हैं। हम सब में कुछ न कुछ सामर्थ और कुछ न कुछ कमजोरियां जरूर होती हैं। और हम सबका पवित्र आत्मा के साथ एक अद्वितीय व्यक्तिगत रिश्ता है। और ये सब बातें हमारी योग्यता और प्रवृति को प्रभावित करते हैं कि हम ऐसे निर्णय लें जो परमेश्वर को सम्मान दे।

व्यक्तिगत चरित्र के विषयों के अतिरिक्त, हमें नैतिक निर्णय लेते हुए हर व्यक्ति के अनुभवों का ध्यान रखना चाहिए।

अनुभव

व्यक्तिगत अनुभव उंगली के निशानों के समान होते हैं। उंगली के निशान ऐसी लकीरों से बने होते हैं जो कई आकृतियां बनाती हैं, जैसे चाप, कुण्डली, और गोले। और यद्यपि सबकी उंगलियों के निशान इन सारी चीजों से बने होते हैं, फिर भी हरेक कि उंगलियों के निशान अलग-अलग होते हैं।

यही बात हमारे अनुभवों के लिए भी लागू होती है। हम में से अधिकांश के अनुभव एकसमान होते हैं, परन्तु अनुभवों का संयोजन हर व्यक्ति में अलग-अलग होता है। हमारे अनुभवों की श्रेणी में हम कुछ ऐसी बातों को भी शामिल कर लेते हैं जैसे हमारी आनुवांशिकता, हमारी परिपक्वता, हमारी शिक्षा, हमारे अवसर, हमारा स्तर और पद, और निसंदेह वह सब जो हम सोचते, कहते और करते हैं। और हमारी नैतिक परिस्थिति की विशेषताओं के रूप में ये अनुभव आंशिक रूप से हमारी नैतिक जिम्मेदारियों को निर्धारित करते हैं।

अब एक भाव में, हम सब एक तरह की परीक्षाओं का सामना करते हैं, जैसे परमेश्वर की व्यवस्था का उल्लंघन करने की परीक्षा। परन्तु हम सब लोग अलग-अलग रूप में इस परीक्षा का अनुभव करते हैं। उदाहरण के तौर पर, हम सब चोरी करने की परीक्षा में पड़ते हैं, परन्तु इस परीक्षा के विवरण हम सबके लिए अलग-अलग होते हैं। और हम सब लोग लैंगिक रूप से भी परीक्षा में पड़ते हैं, परन्तु जिन परीक्षाओं का हम सामना करते हैं सब लोगों के लिए भिन्न-भिन्न होती हैं। अतः जब हम मसीही नैतिक शिक्षा के विषय को देखते हैं तो हमें यह देखने की जरूरत है कि हम में से हरेक अलग-अलग आत्मिक युद्ध में लगा हुआ है। और हमारे अलग-अलग युद्धों के विवरण वे महत्वपूर्ण वास्तविकताएं हैं जिन पर हमें ध्यान देने की जरूरत है।

उदाहरण के तौर पर, हमारी आनुवांशिकता के आधार पर हम सब हमारे माता-पिता का सम्मान करते हैं। परन्तु हम सबके माता-पिता समान नहीं हैं। बल्कि, हम सब हमारे अपने माता-पिता का सम्मान करते हैं। और परिपक्वता के विषय में, हमारी आयु के साथ-साथ माता-पिता के सम्मान में बदलाव आता रहता है। जब हम छोटे होते हैं तो खासकर उनकी आज्ञा मानने और उनका आदर करने के द्वारा उनका सम्मान करते हैं। जब हम बड़े हो जाते हैं और हमारे माता-पिता बुजुर्ग हो जाते हैं तो हमें कई रूपों में उनका सम्मान करना होता है, जैसे उनकी भौतिक जरूरतों को पूरा करना। हरेक अनुभव हमें नियमित जिम्मेदारियां देता है जो किसी न किसी

रूप में सबके लिए अलग-अलग होती हैं। जब हमारे सामने नैतिक प्रश्न आते हैं, तो ये महत्वपूर्ण वास्तविकताएं हैं जिन पर हमें ध्यान देना जरूरी है।

चरित्र और व्यक्तिगत अनुभवों की इन धारणाओं को मन में रखते हुए, हमें मानवीय शरीर से संबंधित वास्तविकताओं और हमारी नैतिक परिस्थिति पर डाले गए उनके प्रभाव की ओर लगाना चाहिए।

शरीर

हमारे शरीरों से जुड़ी ऐसी कई वास्तविकताएं हैं जो नैतिक परिस्थितियों में कार्यरत होती हैं, जैसे कि हमारी भौतिक आयु, हमारी योग्यताएं और अयोग्यताएं, हमारी आनुवांशिकता, और हमारी बौद्धिक योग्यताएं। उदाहरण के तौर पर, व्यवस्थाविवरण 1:35-39 में परमेश्वर ने इस प्रकार व्यस्कों और बच्चों को अलग-अलग किया:

> निश्चय इस बुरी पीढ़ी के मनुष्यों में से एक भी उस अच्छे देश को देखने न पाऐगा, जिसे मैं ने उनके पितरों को देने की शपथ खाई थी... कालेब (और) यहोशू... फिर तुम्हारे बालबच्चे जिनके विषय में तुम कहते हो, कि ये लूट में चले जाएंगे, और तुम्हारे जो लड़केबाले अभी भले बुरे का भेद नहीं जानते, वे वहाँ प्रवेश करेंगे, और उन को मैं वह देश दूँगा, और वे उसके अधिकारी होंगे। **(व्यवस्थाविवरण 1:35-39)**

जब इस्राएल ने मरूभूमि में परमेश्वर के विरूद्ध विद्रोह किया तो यहोवा ने यहोशू और कालेब के अतिरिक्त संपूर्ण व्यस्क जाति को दोषी ठहराया। परन्तु उसने उस जाति के बच्चों को दोषी नहीं ठहराया क्योंकि उन्हें अभी तक भले और बुरे का ज्ञान नहीं था। इस और ऐसे कई रूपों में पवित्रशास्त्र दर्शाता है कि हमारी नैतिक जिम्मेदारियां आंशिक रूप से हमारी भौतिक परिपक्वता और हमारी बौद्धिक योग्यताओं द्वारा निर्धारित की जाती हैं।

परन्तु पवित्रशास्त्र यह भी सिखाता है कि हमारे शरीरों से जुड़ी वास्तविकताएं हमारी नैतिक जिम्मेदारियों को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। पवित्रशास्त्र के एक सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण के रूप में इस वास्तविकता पर ध्यान दें कि पाप हमारे शरीरों में वास करता है और परमेश्वर के प्रति आज्ञाकारी बनने से रोकता है। फिर भी, परमेश्वर हमारे शरीरों में रहने वाली इस समस्या के फलस्वरूप किए जाने वाले पाप को नजरअंदाज नहीं करता। रोमियों 7:18-24 में पौलुस द्वारा दिए गए इस समस्या के विवरण को सुनें:

> मेरे शरीर में कोई अच्छी वस्तु वास नहीं करती... क्योंकि मैं भीतरी मनुष्यत्व से तो परमेश्वर की व्यवस्था से बहुत प्रसन्न रहता हूँ। परन्तु मुझे अपने अंगो में दूसरे प्रकार की व्यवस्था दिखाई पड़ती है, जो... मुझे पाप की व्यवस्था के बन्धन में डालती है जो मेरे अंगों में है... मुझे इस मृत्यु की देह से कौन छुड़ाएगा? **(रोमियों 7:18-24)**

हमारे शरीरों में वास करने वाला पाप हमें पाप करने में प्रेरित करता है। परन्तु जैसा कि पौलुस ने दर्शाया, इस असमंजस का समाधान हमारे दोष का इनकार करना नहीं बल्कि उद्धारकर्ता को पुकारना है।

और आनुवांशिकता और व्यवहार के बीच संबंध इससे मिलता जुलता है। अनेक वैज्ञानिकों ने सुझाव दिया है कि एक ओर तो आनुवांशिकता और दूसरी ओर आपराधिक हिंसा, पियक्कड़पन और समलैंगिकता जैसे व्यवहारों में अनुरूपता पाई जाती है। अतः ऐसा हो सकता है कि हमारे उत्पक (जीन) और हमारे अंदर वास करने वाला पाप हमारे लिए परमेश्वर की आज्ञाओं को मानना कठिन कर देता है। फिर भी, परमेश्वर की

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

आज्ञाएं हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं। अतः जब हमारे शरीर हमारे लिए पाप करना सरल और प्राकृतिक बना देते हैं, तब भी वे हमें उन पापों से छुटकारा नहीं देते जिनकी बाइबल साफ तौर पर निन्दा करती है।

हमने यहां पर चरित्र, व्यक्तिगत अनुभवों और मानवीय शरीर से जुड़ी वास्तविकताओं को देख लिया है, अब हम परमेश्वर द्वारा हमें दी गई भूमिकाओं के नैतिक महत्व को संबोधित करने के लिए तैयार हैं।

भूमिकाएं

हम सबकी जीवन में अनेक भूमिकाएं होती हैं। संसार में हम माता-पिता, बच्चे, भाई-बहन, पति-पत्नी, मालिक, नौकर और कई अन्य भूमिकाएं निभाते हैं। इससे परे, परमेश्वर ने लोगों को कलीसिया के भीतर अलग-अलग पदों और कार्यों के लिए भी रखा है, जिससे हमारे पास प्राचीन, सेवक, सुसमाचार-प्रचारक, शिक्षक आदि हैं। और कलीसिया में हमारा कोई पद हो या न हो, परमेश्वर ने आत्मिक रूप से हर विश्वासी को अलग-अलग रूपों में वरदान दिए हैं, और वह हमसे चाहता है कि हम हमारे वरदानों को मसीह में हमारे भाइयों और बहनों की सेवा में लगाएं। और ये सारी भूमिकाएं हमारे समक्ष कई परीक्षाएं एवं जिम्मेदारियां रखती हैं।

उदाहरण के तौर पर, यदि हम कलीसिया में सेवक हैं, तो यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम बुद्धिमानी एवं भक्तिपूर्ण रूप से परमेश्वर के लोगों को चलाएं, सिखाएं और डांटें। परन्तु यदि हम कलीसिया में बच्चे हैं, ऐसे अधिकार को लेना एवं ऐसा व्यवहार करना हमारे लिए गलत होगा। एक और उदाहरण के तौर पर, इस बात पर ध्यान दें कि नया नियम व्यस्क लोगों, विशेषकर पतियों और पिताओं को सिखाता है कि वे अपने एवं अपने परिवारों के जीवनयापन के लिए काम करें। जैसा कि पौलुस ने 1 तीमुथियुस 5:8 में लिखा:

> पर यदि कोई अपनों की और निज करके अपने घराने की चिन्ता न करे, तो वह विश्वास से मुकर गया है, और अविश्वासी से भी बुरा बन गया है। (1तीमुथियुस 5:8)

अतः हम देख सकते हैं कि यह कुछ लोगों की जिम्मेदारी है कि वे काम करके दूसरों की सहायता करें, विशेषकर उनकी जिन्हें परिवार को चलाने की भूमिका मिली है। और इसी प्रकार, जब हमें हमारे परिवारों को चलाने की जिम्मेदारी मिली है तो हम इस जिम्मेदारी से भागने की परीक्षा का सामना करते हैं।

किसी न किसी स्तर पर, यह उन सब भूमिकाओं पर भी लागू होता है जो हम लेते हैं। प्रत्येक भूमिका हमें एक नई परीक्षा के सामने खड़ी करती है और हमारे समक्ष विशेष जिम्मेदारियों को रखती हैं, और इस रूप में प्रत्येक भूमिका हमारी नैतिक परिस्थिति में महत्वपूर्ण और जटिल वास्तविकता है।

अतः हम देखते हैं कि जब बाइबल पर आधारित निर्णय लेने होते हैं तो कई ऐसी वास्तविकताएं होती हैं जिन पर हमें ध्यान देना होता है और जो मनुष्य होने के नाते हमारे अस्तित्व से जुड़ी होती है, एकदूसरे के साथ रहते हुए समाज के सदस्य के रूप में और अपने साथ रहते हुए व्यक्तिगत मनुष्य के रूप में।

निष्कर्ष

इस अध्याय में हमने उन मुख्य श्रेणियों को दर्शाया है जिन्हें हमें बाइबल के आधार पर नैतिक प्रश्नों का उत्तर देते हुए ध्यान में रखना है। हमने स्वयं परमेश्वर, विशेषकर उसके अधिकार, नियंत्रण और उपस्थिति के बारे में महतवपूर्ण वास्तविकताओं को देखा है। हमने उन वास्तविकताओं का वर्णन किया है जो सामान्य

रूप में सृष्टि को दर्शाते हैं, जिसमें हमने प्राकृतिक और गैरप्राकृतिक क्षेत्रों को देखा है। और हमने मानवजाति को समाज के संदर्भ में और एक व्यक्तिगत स्तर पर देखा है। ये तीन आधारभूत श्रेणियां हमारी नैतिक परिस्थिति की वास्तविकताओं का विश्लेषण करने की अच्छी शुरूआत प्रदान करती हैं।

जब हम परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण से नैतिक शिक्षा को देखते हैं, तो यह बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है कि हम उन सारी वास्तविकताओं को पहचाने और उन पर ध्यान दें जो परमेश्वर के समक्ष हमारी जिम्मेदारियों को प्रभावित करती हैं। इनमें से सबसे आधारभूत वास्तविकताएं सदैव परमेश्वर का अस्तित्व और उसका चरित्र हैं, परन्तु हमसे और हमारे चारों ओर से जुड़ी हुई वास्तविकताएं भी हम पर नैतिक जिम्मेदारियां डालती हैं। अतः जितनी अधिक वास्तविकताओं पर हम ध्यान देते हैं, उतना ही अधिक यह आत्मविश्वास हम में आ सकता है कि हमारे नैतिक चुनाव वास्तव में बाइबल पर आधारित निर्णय हैं।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।